मूल्य १०/-

मासिक पत्रिका, वर्ष ०८, अंक ०४

मानमन्दिर बरसाना

चैत्र-वैशाख, वि.सं. २०८० (अप्रैल २०२४ ई.)

श्री ब्रजशरण बाबा परम पूज्यश्री रमेश बाबाजी महाराज के उत्तराधिकारी घोषित हुए व श्री नरसिंह दास बाबा को संरक्षक के पद पर मनोनीत किया गया

'मानमन्दिर कला अकादमी' द्वारा प्रस्तुत नाटिका
'राधाकृष्ण विवाहोत्सव' की झलकियाँ
०२

अनुक्रमणिका

विषय- सूची — पृष्ठ- संख्या

१ श्री माताजी गौशाला के वार्षिक-उत्सव के अवसर पर संपन्न हुआ सीतारामविवाह-महोत्सव.....०५

२ श्रीब्रजशरणबाबा हुए 'श्रीरमेशबाबाजीमहाराज' के उत्तराधिकारी घोषित; संत श्रीनरसिंहदासजी को आजीवन संरक्षक घोषित किया गया.....०६

३ 'श्रीराधाकृष्ण-विवाहलीला' के गायक संत चाचावृन्दावनदासजी.....०७

४ श्रीसखी-सहचरियों की अभिलाषा.....११

५ चाचा श्रीवृन्दावनदासजी का हितोपदेश.....१३

६ साँझी-लीला में श्रीयशोदा-मिलन.....१५

७ कन्हैया की विवाह-उत्कण्ठा.....१८

८ श्रीराधाकृष्ण-विवाहलीला.....२०

९ वास्तविक ब्रजप्रेम-निष्ठा.....२२

१० श्रीधाम-आराधना.....२६

१० श्रीमानविहारी-विग्रह के प्रदाता 'मित्तल-दम्पत्ति'.....२८

११ सबसे सरल-सरस साधन 'कथा-कीर्तन'.....२९

|| राधे किशोरी दया करो ||

हमसे दीन न कोई जग में,
बान दया की तनक ढरो ।
सदा ढरी दीनन पै श्यामा,
यह विश्वास जो मनहि खरो ।
विषम विषयविष ज्वालमाल में,
विविध ताप तापनि जु जरो ।
दीनन हित अवतरी जगत में,
दीनपालिनी हिय विचरो ।
दास तुम्हारो आस और की,
हरो विमुख गति को झगरो ।
कबहूँ तो करुणा करोगी श्यामा,
यही आस ते द्वार पर्‌यो ।

– पूज्यश्री बाबामहाराज कृत

परम पूज्यश्री रमेश बाबा महाराज जी द्वारा सम्पूर्ण भारत को आह्वान –

"मजदूर से राष्ट्रपति और झोंपड़ी से महल तक रहने वाला प्रत्येक भारतवासी विश्वकल्याण के लिए गौ-सेवा-यज्ञ में भाग ले ।"

*** योजना ***

अपनी आय से १ रुपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन निकालें व मासिक, त्रैमासिक, अर्धवार्षिक अथवा वार्षिक रूप से इकट्ठा किया हुआ सेवाद्रव्य किसी विश्वसनीय गौसेवा प्रकल्प को दान कर गौरक्षा कार्य में सहभागी बन अनन्त पुण्य का लाभ लें । हिन्दूशास्त्रों में अंशमात्र गौसेवा की भी बड़ी महिमा का वर्णन किया गया है ।

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप प्रातःकालीन सत्संग का ८.०० से ९:३० बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:३० से ८:०० बजे तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं ।

संरक्षक- **श्रीराधामानबिहारीलाल**

प्रकाशक – **राधाकान्त शास्त्री, मानमंदिर , गह्वरवन, बरसाना, मथुरा** (उ.प्र.)

mob. **राधाकांत शास्त्री** .....9927338666, Website :www.maanmandir.org)

(E-mail :info@maanmandir.org)

विशेष:- इस पत्रिका को स्वयं पढ़ने के बाद अधिकाधिक लोगों को पढ़ावें जिससे आप पुण्यभाक् बनें और भगवद्-कृपा के पात्र बनें । हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है – **सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ । जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि ।।** (श्रीमद्भागवत३/७/४१)
अर्थ:- भगवत्तत्त्वके उपदेश द्वारा जीव को जन्म-मृत्यु से छुड़ाकर उसे अभय कर देने में जो पुण्य होता है, समस्त वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादि से होनेवाला पुण्य उस पुण्य के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं हो सकता ।

प्रकाशकीय

भक्ति एक ऐसा साधन है, जिसमें कोई परिश्रम नहीं करना है – न योग, न जप, न तपस्या, न उपवास और न व्रत । 'यज्ञादि' जिनमें बहुत परिश्रम करना पड़ता है, वे कठिन साधन 'भक्ति' में करने की आवश्यकता नहीं है । 'भक्ति' तो कुटिलता रहित हो, बस इतना ही आवश्यक है; ऐसे आचरण से 'भगवान्' आधीन हो जाते हैं ।

सरल सुभाव न मन कुटिलाई । जथा लाभ संतोष सदाई ॥
कहहु भगति पथ कवन प्रयासा । जोग न मख जप तप उपवासा ॥ (श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड – ४६)

सन्तोष, सरलता के साथ समर्पिता (समर्पणमयी) भक्ति इतना सशक्त बना देती है कि उस 'भक्त' का ब्रह्मा, शिवादि कुछ नहीं बिगाड़ सकते । ऐसी ही परम भक्ता ब्रजदेवियाँ थीं, जिनकी सतत् दासता किया करते थे भगवान् श्रीकृष्ण । एक व्यक्ति की कुटिलता सारे संसार के लिए घातक है । प्रेमरस से सारे संसार को बाँध दो ।

जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना । जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना ॥ (श्रीरामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड – ४०)

हम दास बनकर रहें, स्वामी बनकर नहीं । स्वामी बनने वाला अत्यन्त नीच हो जाता है । कहीं ममता मत रखो । इस प्रकार वैराग्य से रहने वाला ही सच्चा भक्त है ।

देहेऽस्थिमांसरुधिरेऽभिमतिं त्यज त्वं जायासुतादिषु सदा ममतां विमुञ्च ।
पश्यानिशं जगदिदं क्षणभङ्गनिष्ठं वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः ॥ (श्रीभागवतमाहात्म्य – ४/७९)

किसी भी वस्तु को अपना समझना ही नीचता है । सब कुछ 'भगवान्' का है, हम केवल उनके दास हैं । जो अनिकेत है, वह 'भगवान्' का परम प्रिय है । घर में रहो परन्तु अनासक्ति से, परन्तु ऐसा होता नहीं है । जिस परिवार में रह रहे हैं और वहाँ आसक्ति न हो, यह बड़ा कठिन है । आसक्ति के बाद आस्वाद होता है । हम सांसारिक विषयों का भोग कर रहे हैं तो हमारी आसक्ति 'इन्द्रिय और इन्द्रियजनित भोग' में अवश्य है । धीर पुरुष ही समस्त आसक्तियों को छोड़ पाते हैं । अनासक्त भक्त 'भगवान् के निज धाम' को प्राप्त होता है । आसक्ति कहीं भी है, वह 'भगवत्प्रेम' में बाधक है । सब कुछ जब भगवान् का है तो यदि उसमें अपनापन (मैं-मेरापन) आया तो यह अपराध है, अपना मानेंगे तो भोगबुद्धि आएगी ही ।

नन्दनन्दन करि घर को ठाकुर, आपुन ह्वै रहो चेरो ॥ (श्रीसूरदासजी)

सबमें अपने आराध्य को देखो । भेद दृष्टि से बचो । भेद आएगा तो द्वेष हो जाएगा, द्वेष होगा तो शत्रुता बढ़ जायेगी । शत्रुता किससे ? स्वयं भगवान् से । शत्रुता करने वाले को शान्ति कहाँ ?

द्विषतः परकाये मां मानिनो भिन्नदर्शिनः ।
भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शान्तिमृच्छति ॥ (श्रीभागवतजी ३/२९/२३)

हजारों जगह हमारी आसक्ति है और आसक्ति है तो कामना भी होगी । कामना के रहते काम, क्रोध अवश्य आयेंगे । इसलिए सच्ची शान्ति (असली आनन्द) तो निष्काम भक्ति करने में ही है ।

'श्रीमानमन्दिर कला अकादमी' द्वारा 'रंगीली होली' के पूर्व रात्रि-वेला में लगभग ४-५ घण्टे तक 'श्रीराधाकृष्ण-विवाहलीला' का परमपावनकारी नाट्य-मंचन हुआ तथा रंगीली-होली के मंगलमय दिवस में ब्रजरसिकों द्वारा रसियाओं के माध्यम से परमानन्दकारी 'नृत्य-गान' सम्पन्न हुआ ।

प्रबन्धक
राधाकान्त शास्त्री
श्रीमान मन्दिर सेवा संस्थान

श्री माताजी गौशाला के वार्षिक-उत्सव के अवसर पर संपन्न हुआ सीतारामविवाह-महोत्सव

ब्रजभूमि जहाँ श्री राधाकृष्ण की नित्य लीला सतत् संपादित होती रही है एवं जहाँ युगल सरकार के अनगिनत उत्सव ही आराधना की पद्धति है; ऐसी नित्य लीलाभूमि के श्रीधाम बरसाना में स्थित श्रीमाताजी गौशाला का परिसर, जहाँ ६०,००० से अधिक गौवंश का पूरी निष्ठा से पालन हो रहा है, प्रतिवर्ष की भाँति इस बार भी पद्मश्री परम पूज्य श्रीरमेशबाबाजीमहाराज के सानिध्य एवं बक्सर वाले मामाजी परम पूज्य नारायणदासजी भक्तमालीजी महाराज की पावन स्मृति में भव्य सीताराम विवाह महोत्सव एवं श्रीमद् भागवत कथा ज्ञान यज्ञ का साक्षी बना। ब्रजभूमि के अनेक प्रख्यात संत-महात्माओं ने अनुग्रह पूर्वक पधार कर इस उत्सव की शोभा बढ़ाई, जिनमें प्रमुख रूप से परमपूज्य मलूकपीठाधीश्वर स्वामी श्रीराजेंद्रदास देवाचार्यजीमहाराज, परम पूज्य श्रीगौरी कुंज वाले महाराजश्री परमपूज्य स्वामी श्री ललिताशरणजी महाराज बड़ा रासमंडल, परमपूज्य स्वामी रसिक माधवदासजी महाराज, परमपूज्य संत श्रीराधाचरणदासजी महाराज, पूज्य स्वामी श्रीबिहारीदासजीमहाराज (भक्तमाली), परमपूज्य रसिकाचार्य स्वामी श्रीकिशोरदासदेवजू महाराज, परमपूज्य पीपा द्वाराचार्य स्वामी श्रीबलरामदासजी महाराज, परमपूज्य फूलडोल बिहारीदासजीमहाराज, परमपूज्य श्रीपंकजबाबाजी महाराज, श्रीगोपेशबाबाजी आदि श्रीसीतारामविवाह-उत्सव में उपस्थित हुए । इस विवाहोत्सव में प्रेमसरोवर स्थित सुदामा कुटी के महंत परम पूज्य श्रीरामराजबाबाजी महाराज ने सम्पूर्ण विवाह उत्सव में वर पक्ष का प्रतिनिधित्व कर सभी को कृतार्थ किया । सात दिवसीय सीताराम-विवाहोत्सव में श्रीरामलीला का मंचन पूज्य बक्सर वाले मामाजी श्रीनारायणदासजी भक्तमाली की सुपुत्री सुश्री सियाजी द्वारा एवं उनके ही कृपापात्र परम पूज्य महंत श्रीनरहरीदासजीमहाराज के संयुक्त प्रयास से किया गया । ब्रजभूमि में संपन्न हुए इस भव्य सीतारामविवाह-उत्सव को देखने के लिए देशभर से हजारों की संख्या में वैष्णव पहुँचे, जिन्होंने सातों दिन गौशाला परिसर में रुककर पूरे विवाहोत्सव का आनंद लिया। सीताराम-विवाह-उत्सव के दौरान अत्यंत दर्शनीय अनुपम राम-बारात का आयोजन भी किया गया, जिसमें कई हजार संत-महात्माओं, ब्रजवासियों व देशभर से आये भक्तों ने भाग लिया एवं विवाह-उत्सव की सैकड़ों भव्य झांकियाँ के मध्य नृत्य-गान व कीर्तन में सम्मलित होकर अत्यन्त प्रफुल्लित हुए । प्रतिदिन कई हजार वैष्णवों व ब्रजवासियों ने स्वादिष्ट भोजन प्रसादी के साथ-साथ संपन्न हुए अनेक अद्भुत लीला कार्यक्रमों का रसपान किया । इस अलौकिक भक्तिरस से पूरित सीताराम विवाह-उत्सव के साथ ही श्रीमद्भागवत कथा ज्ञान का भी आयोजन हुआ, जिसका वाचन मानमंदिर के संत श्रीभक्तशरणजी द्वारा किया गया । यह महोत्सव श्रीमाताजी गौशाला का वार्षिक महोत्सव है एवं अगले वर्ष पुनः बसंत पंचमी की तिथि से मानमंदिर सेवा संस्थान द्वारा आयोजित किया जाएगा ।

श्रीब्रजशरणबाबा हुए 'श्रीरमेशबाबाजीमहाराज' के उत्तराधिकारी घोषित; संत श्रीनरसिंहदासजी को आजीवन संरक्षक घोषित किया गया

हाल ही में सम्पन्न हुए सीतारामविवाह-महोत्सव के मध्य में ही परमपूज्य पद्मश्री श्रीरमेशबाबामहाराज की सत्प्रेरणा एवं उनके आदेशानुसार ब्रज के सभी प्रमुख संतों की उपस्थिति में मानमंदिर सेवा संस्थान की विशेष कार्यकारिणी सभा के दौरान विगत् २५ वर्षों से पूज्यश्रीरमेशबाबामहाराज के सानिध्य व संरक्षण में ब्रजभूमि की सतत् सेवा कर रहे मानमंदिर के परम गौसेवी संत श्रीब्रजशरणबाबा को श्रीरमेशबाबामहाराजजी का उत्तराधिकारी घोषित किया गया। इसके साथ ही विगत् ४० वर्षों से अधिक मानमंदिर पर निवास कर रहे एवं देश-विदेश में भगवन्नाम का व्यापक प्रचार कर रहे संत श्रीनरसिंहदासजीमहाराज को आजीवन संरक्षक घोषित किया गया है । इस अवसर पर बड़ी संख्या में उपस्थित ब्रजभूमि के संत-समाज व ब्रज में स्थित प्रमुख देवालयों के सेवायत अधिकारियों ने दोनों मनोनीत संतो को चादर उढ़ाकर अपनी स्वीकृति प्रदान करी। परम पूज्य श्रीरमेशबाबामहाराजजी ने दोनों ही संतो को आजीवन निष्काम भाव से ब्रजभूमि व गौसेवा का संकल्प दिलवाया, साथ ही पूरे देश भर में भगवन्नाम व गौसेवा के प्रचार का दायित्व सौंपा ।

'श्रीराधाकृष्ण-विवाहलीला' के गायक संत चाचावृन्दावनदासजी

'श्रीहितवृन्दावनदासजी' जो आगे चलकर 'चाचाश्रीवृन्दावनदासजी' के नाम से भी प्रसिद्ध हुए, आपका श्रीराधावल्लभ सम्प्रदाय के सन्त कवियों में प्रमुख स्थान है । काव्य परिमाण, गीत बहुलता और शैली की विविधता की दृष्टि से जितना व्यापक विस्तार 'श्रीवृन्दावनदासजी' का है, उतना और किसी कवि का नहीं है । हिन्दी साहित्य की भक्तिकालीन और रीतिकालीन काव्य परिपाटी का जितनी समग्रता के साथ उन्होंने निर्वाह किया है, गोस्वामी तुलसीदासजी व श्रीसूरदासजी को छोड़कर ऐसा कोई अन्य कवि नहीं कर सका । साक्षात् सरस्वतीजी का दिव्य वरदान लेकर वे अवतीर्ण हुए थे, इसीलिए काव्यमयी सरस वाणी का अजस्त्र निर्झर उनके कण्ठ से आजीवन प्रवाहित होता रहा । उनकी कृतियों में उल्लिखित संवतों को ध्यान में रखते हुए सन् १६९५ ई. से १७१० ई. तक उनका जन्म तथा सन् १७९३ ई. के आसपास उनका निधन काल निश्चित किया गया है ।

उनकी भाषा को देखकर तो ऐसा प्रतीत होता है कि वे ब्रजमण्डल के ही निवासी थे और युवावस्था में विरक्त होकर वृन्दावन में आ गये थे । बाद में मुगलों (यवनों) के आक्रमणों से तंग आकर इधर-उधर अनेक स्थानों में भटकते रहे ।

'हरिकला वेली' नामक रचना में यवनों के आक्रमणों का उन्होंने बड़े विस्तार से वर्णन किया है । वृन्दावनदासजी के नाम के साथ 'चाचाजी' शब्द का प्रयोग इसलिए होने लगा क्योंकि गोस्वामीजी के पिता के गुरुभ्राता होने के कारण गोस्वामीजी की देखादेखी और लोग भी उन्हें 'चाचा' कहकर पुकारने लगे, अन्य समाज में भी आगे चलकर वे 'चाचाजी' के नाम से विख्यात हो गये । श्रीवृन्दावनदासजी ने अपने उपनाम या छाप के रूप में तीन शब्दों का प्रयोग किया – वृन्दावनहितरूप, वृन्दावनहित और वृन्दावन । वृन्दावनदासजी ने सन् १७३८ ई. के आसपास काव्य रचना प्रारम्भ किया होगा। उनकी प्रथम रचना में विक्रम संवत् १८०० का उल्लेख मिलता है किन्तु कुछ कृतियों में संवत् का उल्लेख नहीं है और वे पहले की रचनाएँ प्रतीत होती हैं ।

ऐसा प्रसिद्ध है कि श्रीवृन्दावनदासजीमहाराज स्वयं अपने हाथ से नहीं लिखते थे, उनके साथ सदा एक लेखक रहता था और जब उनकी इच्छा होती, पद-रचना में लीन हो जाते थे । ब्रजभूमि से बाहर रहने पर भी उन्होंने कभी काव्य-रचना नहीं छोड़ी थी । संवत् १८३१ से संवत् १८३६ तक उन्हें ब्रज से बाहर रहने को विवश होना पड़ा था किन्तु उस समय भी उन्होंने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'लाड़-सागर' की रचना की थी । ब्रज के भक्ति-सम्प्रदायों में जितने भी कवि हुए हैं, उनमें चाचा श्रीवृन्दावनदासजी की रचनाओं की संख्या सबसे अधिक है । राधावल्लभीय ग्रन्थ सूची 'साहित्य रत्नावली' में इनके द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या १५८ लिखी है । वैसे इनके द्वारा रचित सवा लाख पदों की भी वृन्दावन में प्रसिद्धि है । केवल अष्टयाम लीला के सम्बन्ध में ही यह प्रसिद्ध है कि इन्होंने प्रत्येक दिवस के अनुसार ३६५ अष्टयाम लिखे थे । इनके द्वारा रचित ग्रन्थों में 'लाड़ सागर', 'ब्रज प्रेमानन्द सागर', 'वृन्दावन जस प्रकाश वेली', 'विवेक पत्रिका वेली', 'कृपा अभिलाषा वेली', 'रसिक पथ चन्द्रिका', 'युगल स्नेह पत्रिका', 'हित हरिवंश सहस्त्रनाम', 'कली चरित्र वेली', 'आर्त्त पत्रिका', 'छवि लीला' और 'स्फुट पद' महत्वपूर्ण हैं । ब्रज के सीमावर्ती स्थलों में बसे ग्रामों की सूची बताने वाला इनका अत्यधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है – 'प्राचीन ब्रज-परिक्रमा' । ब्रज चौरासी कोस से भी अधिक विस्तृत ब्रज के सन्दर्भ में 'मान मन्दिर सेवा संस्थान' द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ 'रसीली ब्रजयात्रा – भाग दो' के लेखन में चाचाजी द्वारा लिखित इस ग्रन्थ से बहुत अधिक सहायता प्राप्त हुई है । वेळी काव्य का सर्वाधिक साहित्य आपका ही रचा हुआ है ।

चाचाजी के काव्य की भाषा बोलचाल की ब्रजभाषा है, जिसे हम घरेलू ब्रजभाषा भी कह सकते हैं । 'कोमल कान्त तत् सम्पदावली' का आग्रह इनमें नहीं था । रीति कालीन कवियों के समसामयिक होने पर भी साम्प्रासिक परिमार्जित भाषा को बचाकर घरेलू भाषा का प्रयोग इन्होंने जानबूझकर किया है । इनकी भाषा में संवादात्मकता अधिक है । 'लाड़ सागर' और 'ब्रज प्रेमानन्द सागर' के आख्यान प्रसंगों में नाटकीयता लाने के लिए इन्होंने संवादों को अधिक स्थान

दिया है । मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में मिलता है । चाचाजी की रचनाओं का प्रमुख विषय सरस भक्ति था, फिर भी उन्होंने श्रृंगार, वात्सल्य, हास्य और करुणरस के अनुकूल अनेक प्रसंगों की अवतारणा अपनी रचनाओं में की है । कलियुग के प्रसंग में करुणरस का अच्छा वर्णन है । श्रृंगार और वात्सल्य उनके सर्वाधिक प्रिय विषय थे । छन्द विधान में भी इनकी कुशलता सर्वथा देखी जा सकती है । प्रबन्ध काव्य के अनुकूल दोहा-चौपाई का प्रयोग भी पर्याप्त है किन्तु कवित्त, सवैया, सोरठा, अरिल्ल, छप्पय, मंगल, करघा आदि छन्दों का विपुल प्रयोग है । लोकगीतों का प्रयोग भी उन्होंने किया है । विवाह-वर्णन-प्रसंग में गाली गाने के गीत, बन्ना-बन्नी के गीत, घुडचढ़ी के गीत बिल्कुल लोकगीतों की धुन पर आधारित हैं । रासलीला में आज भी इनके द्वारा रचित पदों का प्रयोग होता है । रासलीलाओं के लिए इन्होंने अनेक लीलायें सम्वादात्मक शैली में लिखी थीं । श्रीवृन्दावनदासजी के विशाल साहित्य सागर की सीमाओं का अभी तक न तो पूर्ण रूप से पता चला है और न ज्ञात साहित्य की विधिवत् अवदाहिना ही हुई है । उनके साहित्य के परिमाण को देखकर कहा जा सकता है कि यदि ब्रजभाषा के आदिकवि के रूप में सूरदासजी तथा संस्कृत-काव्य के आदिकवि के रूप में वाल्मीकिजी हैं तो ब्रजभाषा को विशुद्ध व्यापक विस्तार देने का श्रेय महाकवि-व्यास के रूप में 'चाचा वृन्दावनदासजी' को प्राप्त है । निश्चय ही वे ब्रजभाषा काव्य के व्यास हैं ।

ब्रजरस-भक्तिधारा को अधिक व्यापक बनाने में चाचा वृन्दावनदासजी का महत्वपूर्ण योगदान है । चाचाजी का जन्म १६९४ ई.के लगभग श्यामसुन्दर की क्रीड़ास्थली ब्रजधाम के किसी ग्रामाचल में ब्राह्मण कुल में हुआ था । आप बाल्यकाल से ही दिव्य गुणों से युक्त एवं प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के धनी थे ।

आध्यात्मिक जीवन –

थोड़ी-सी ही आयु में आपको श्रीकिशोरीजी के प्रेममय, मंगलमय, रसमय श्रीवृन्दावन धाम के आश्रय का सुयोग प्राप्त हुआ । आप हितावतंस रास वंशी गोस्वामी श्रीहरिलालव्यासजी (श्रीराधासुधानिधि के टीकाकार) के पुत्र स्वनाम धन्य युगलरस अभिषिक्त गोस्वामी श्रीहितरूपलालजी के परम कृपापात्र शिष्य थे । आपको गुरुदेव की कृपा प्राप्त थी । घर की आर्थिक स्थित ठीक न होने के कारण बचपन से ही आप माता-पिता के साथ वृन्दावन धाम में आ गये और गोस्वामी श्रीरूपलालजी महाराज के आश्रय में रहने लगे । गुरुदेव भगवान् की ही कृपा से इन्होंने सम्पूर्ण शास्त्रों का अध्ययन किया । कहते हैं कि जब आप गुरुदेव महाराज के गृह में निवास करते थे तो उस समय गुरुवर श्रीरूपलालजी के प्रिय पौत्र गोस्वामी श्रीलाड़लीलालजी, जो कि युवा थे, आपको नाम लेकर पुकारते थे । यह बात वृन्दावनदासजी को पुत्रवत् स्नेह एवं सम्मान देने वाले गुरुजी को उचित नहीं प्रतीत होती थी, इसलिए गुरुजी ने एक दिन अपने पौत्र को समझाते हुए कहा कि तुम इन्हें नाम से न पुकारकर 'चाचाजी' कहा करो । उसी समय से अन्य सभी लोग इन्हें 'चाचाजी' कहकर पुकारने लगे ।

चाचाजी के मन में प्रवाहित रस वारिधि अब उच्छलित् होना चाहता था, परन्तु स्वामीजी एवं गुरुचरणों की अहैतुकी कृपा के बिना यह कैसे सम्भव हो सकता था और परम करुणामयी श्रीकिशोरीजी तो सदा से ही निजजनों की अभिलाषा को पूर्ण करती आई हैं ।

एक बार गोस्वामी श्रीहितरूपलालजी ने चाचाजी को प्रभु का यश गान करने की आज्ञा दी किन्तु प्रतिभा का प्रस्फुरण न होने से पद बनाने में ये समर्थ नहीं हुए, इससे गुरु ने आज्ञा दी – 'तुम यहाँ से चले जाओ ' गुरु आज्ञा से अत्यन्त दुःखी होकर आप मान सरोवर चले गये किन्तु वहाँ पहुँचते ही श्रीजी ने कृपा की और इनकी प्रतिभा जागृत हो गई । पद-रचना का प्रवाह चल पड़ा और आपने वृन्दावन आकर गोस्वामीजी को राधावल्लभलाल का गुणानुवाद सुनाया । श्रीगुरुकृपालब्ध चाचा श्रीवृन्दावनदासजी के कंठ से अब वाणी का अजस्र प्रवाह होने लगा, जो कि उनके जीवन पर्यन्त सरिता सलिल की भाँति अखण्ड रूप से चलता रहा । चाचाजी इतने रस सिद्ध थे कि स्वप्न में भी लीला-दर्शन करते, जो कि जागने पर इन्हें देखे हुए चित्र की भाँति स्मरण रहती और वे उसे लिपिबद्ध किया करते थे । 'स्वप्न विलास' नामक रचना इसका पुष्ट प्रमाण है ।

वृन्दावनवास करते समय चाचाजी ने कई स्थलियों को अपनी साधना स्थली बनाया । 'इष्टपद-वन्दन वेळी' रचना में आपने लिखा है कि परम इष्ट श्रीश्यामाश्याम ने वृन्दावन के किवारी वन स्थित दावानल कुण्ड के किनारे मुझे कदम्ब वृक्ष लगाने की आज्ञा दी थी और मैंने इस आज्ञा का पालन भी किया । वहाँ कदम्ब-वृक्ष का आरोपण करके पद भी गाया । कदम्ब के वृक्षों का दर्शन आज भी वहाँ होता है ।

चाचाजी ने ब्रज चौरासी कोस का भी भ्रमण किया । गोस्वामी श्रीकृष्णचन्द्रजी के सेव्य स्वरूप श्रीराधामोहनजी के मन्दिर में रसिक भक्तों की प्रेरणा से 'सेवक भक्ति प्रजावली' और 'सेवक यश विरदावली' नामक दो ग्रन्थों की रचना की । इस प्रकार चाचाजी का सम्पूर्ण जीवन श्यामाश्याम के दिव्य चिन्तन में बीता ।

चाचाजी के द्वरा रचित १८७ ग्रन्थ तथा बहुत-सी वाणियाँ कही जाती हैं ।

हित सम्प्रदाय की मान्यतानुसार चाचाजी का निकुंज गमन १७७४ ई. में फाल्गुन शुक्ल द्वितीया को वृन्दावन के प्राण 'सेवाकुञ्ज' में बड़ी ही विचित्र रीति से हुआ । फाल्गुन शुक्ल द्वितीया के दिन सेवाकुञ्ज में पूर्व परम्परा से प्रचलित समाज-गायन हो रहा था । सभी रसिकों के सहित चाचाजी भी समाज-गायन में तल्लीन थे और वे सबके समक्ष रासलीला में तन्मय होकर निज स्वरूप का चिन्तन करते हुए शरीर सहित अन्तर्धान हो गये । उनके स्थान पर उनका एक उत्तरीय (ऊपर से ओढ़ने वाला वस्त्र) ही प्राप्त हुआ । आश्रम में इस घटना के कारण ही श्रीहित नाद बिन्दु परिवार के द्वारा सेवाकुञ्ज में उनका स्मारक-स्थल निर्मित हुआ और पूर्व परम्परा से प्रचलित यह एक दिवसीय समाज-गायन चाचाजी के अष्ट दिवसीय स्मृति-महोत्सव के रूप में परिवर्तित हो गया । उसी दिन से आज भी फाल्गुन शुक्ल द्वितीया से फाल्गुन शुक्ल दशमी तक चाचाजी का यह 'निकुञ्ज-प्राप्ति महोत्सव' सेवाकुञ्ज में होता चला आ रहा है । चाचाजी के निकुञ्ज-प्रवेश का स्मारक चिह्न आज भी सेवाकुञ्ज में विद्यमान है । इसमें उनके द्वारा रचित वाणी की संख्या एवं जीवन-प्रवेश के समय का उल्लेख है ।

चाचाजी ने विरक्त वेष गुरुदेव भगवान् श्रीरूपलाल गोस्वामीजी के निकुंज-गमन के पश्चात् चौंसठ (६४) वर्ष की आयु में ग्रहण किया था ।

अहमदशाह अब्दाली द्वारा वृन्दावन पर आक्रमण –

जब वृन्दावन में यवनों का आक्रमण हुआ था, तब अहमदशाह अब्दाली के उत्पात का वर्णन करते हुए चाचाजी ने हित मुकुन्दलालजी, हित प्रेमदासजी, हित कृष्ण दासजी, भावुक आनन्द घन कवि, जादवदास, कृष्णदास पुजारी, युगलदास अवधूत आदि रसिक भक्तों के आक्रमण में मारे जाने का भी उल्लेख किया है । भक्तों की ऐसी स्थिति को देखकर चाचाजी का हृदय दुःखी था । कुछ दिन बाद चाचाजी फर्रूखाबाद चले गये; वहाँ रासलीला-अनुकरण का आयोजन था । चाचाजी रासलीला देखकर रात्रि में विश्राम कर रहे थे, तभी स्वप्न में आनन्दघन कविजी (नन्दगाँव के गोस्वामी-वंश-परम्परा में प्रसिद्ध भक्त कवि) का ख्याल सुना और देखा कि बारह वर्ष का एक बालक ऊँचे भवन से गिर पड़ा । चाचाजी व्याकुल हो गए कि कहीं बालक मर तो नहीं गया लेकिन वह तुरन्त खड़ा होकर अपनी भुजाएँ ठोकने लगा । चाचाजी के पूछने पर उसने बताया कि मैं तो 'आनन्दघन' के पास आया था । चाचाजी ने पूछा कि आनन्दघनजी कहाँ हैं ? बालक ने कहा – 'पीछे मुड़कर देखो ।' चाचाजी ने पीछे मुड़कर देखा कि रासलीला में सभी भक्त विराजमान हैं जो कि आक्रमण में मारे गये थे । बालक बोला – अभी मैंने एक कला खेली है और एक पुनः खेलूँगा, अर्थात् यवनों का आक्रमण १८१३ ई. एवं १८१७ ई. में दो बार हुआ । प्रातःकाल चाचाजी ने सभी संतों को यह बात बताई व फिर भगवान् की ही इच्छा समझकर आगामी घटनाओं को सहन किया ।

कुछ समय चाचाजी कृष्णगढ़ नरेश बहादुर सिंह और उनके पुत्र वितिर सिंह के राज्य में रहे । राजमहल में निवास करते हुए राजा की प्रार्थना पर कई ग्रंथों की रचना यहाँ हुई । लगभग छः वर्ष यहाँ बहुत कठिनाई से बीते । चाचाजी को वृन्दावन का विरह प्रतिक्षण असह्य हो रहा था। चाचाजी की प्रार्थना स्वीकार कर प्रभु ने कृष्णगढ़ नरेश को स्वप्न में प्रेरणा दी कि चाचाजी को शीघ्र वृन्दावन पहुँचाओ । तब राजा ने चाचाजी को वृन्दावन भेज दिया ।

जब हृदय में प्रेम का प्रादुर्भाव होता है, तब हृदय से प्रेम के प्रतीकात्मक शब्द निकलते हैं । प्रेम के प्रतीकात्मक शब्दों में प्रेम के ही अनन्त रूप एवं गुणों का आख्यान होता है । इस प्रेमोद्गान को ही रसिकों ने वाणी कहकर प्रकीर्तित किया है । हृदय में प्रेम का उदय होने पर गान का प्रादुर्भाव होता है और प्रेम के अनन्त गुणों का गान ही 'वाणी' कहलाता है । जो प्रेम की कृपा प्राप्त कर सके हैं, उन्होंने मुक्त कंठ से उसका गान किया है । चाचा श्री हित वृन्दावन दास जी को श्री गुरु कृपा से अल्प वय में ही यह कृपा प्राप्त हो गयी थी और तभी से उन्होंने वाणी गान प्रारम्भ कर दिया था । एक बार प्रारम्भ होकर यह गान उनके सुदीर्घ जीवन काल में बराबर चलता रहा और इसके द्वारा एक बहुत विपुल साहित्य की सृजना हो गयी । चाचाजी के प्राप्त साहित्य की पद संख्या लगभग एक लाख है, जो कि नई खोज के साथ बराबर बढ़ रही है । मेरी समझ में ब्रज साहित्य के इतिहास में इतनी संख्या में रचना करने वाले सर्वप्रथम चाचाजी हैं । इन्होंने परम्परागत विषयों पर तो विपुल रचना की ही है, रसास्वाद के नये प्रकारों के आविष्कार में भी इनकी प्रतिभा ने बड़ा काम किया है ।

श्रीसूरदासजी ने भी श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं को मानवीय जीवन के अधिक से अधिक निकट लाकर उसको परम आस्वाद्य बना दिया है तो चाचाजी ने भी श्रीकृष्णाराध्या श्रीराधाजी की बाल लीलाओं की अभूत और अभिनव रस सुधा का वितरण किया है और प्रेम की श्रृंगारमयी लीला को साधारण जीवन की मधुर अनुभूतियों के साथ मिलाकर उसको सुगम एवं सुबोध बनाया है । 'लाड़ सागर' इसका उत्तम उदाहरण है, इसमें प्रधानतया श्रीवृषभानुनन्दिनी एवं नन्दनन्दन के विवाह का वर्णन है, जो लोक में प्रचलित विवाह की रीति से किया गया है । लोक में प्रचलित वैवाहिक रीति स्वयं आकर्षक एवं रसमयी है, प्रेम स्वरूप श्री श्यामा-श्याम एवं उनके नित्य परिकर के द्वारा अंगीकृत होकर तो यह रीति परम प्रेम का धाम बन गयी है । साधारण सहृदय व्यक्ति भी इसके द्वारा एक क्षण में परम प्रेम की झाँकी पा जाता है । इसीलिए पिछले १५० वर्षों से यह ग्रन्थ प्रेमी जनों के हृदय का हार बना हुआ है ।

"मिश्र बन्धु विनोद" में चाचाजी का जन्म सम्वत् १७७० वि. और "ब्रज माधुरी सार" में सं. १७६५ दिया हुआ है किन्तु इनकी वाणी के अनुशीलन से वह सं. १७७४ अथवा इसके पूर्व ही सिद्ध होता है । इनकी अब तक उपलब्ध रचनाओं में अन्तिम रचना सं. १८४४ की है । सं. १८३५ तथा १८३६ की रचनाओं में इन्होंने अपने को अत्यन्त जराग्रसित एवं चलने-फिरने में असमर्थ बतलाया है, अन्यत्र इन्होंने यह कहा है कि मेरे अधिक जीने से लोग ऊब से गये हैं और अनेक लोग मेरा 'उठ जाना' चाहते हैं – **थोरे दिन रहै पाहुनौ प्रीति करै सब कोइ ।**
मचलि रहै घर बहुत दिन न्याइ निरादर होइ ॥
एक विचारै राखिवौ बहुत चहैं उठि जाइ ।
न्याइ बटोही वापुरौ मन ही मन पछिताइ ॥

(इष्ट मिलन उत्कण्ठा बेली)

इससे यह सिद्ध होता है कि चाचाजी को पूर्ण आयु प्राप्त हुई थी और इनकी १०० वर्ष की आयु मानकर इनका जन्म काल निर्धारित किया गया है । चाचाजी जन्म से ब्रजवासी थे, इसका प्रमाण मिलता है इनके द्वारा रचित ग्रन्थ 'आर्त्त पत्रिका' में इनके द्वारा व्यक्त किये गये इस भाव से –

"जन्म से सेई जु ब्रजरज अब हियौ अकुलाइ"

किन्तु ब्रज के किस ग्राम या नगर में इनका जन्म हुआ, इसका पता नहीं चलता । "मिश्र बन्धु विनोद" में इन्हें ब्राह्मण और 'ब्रजमाधुरी सार' में इन्हें गौड़ ब्राह्मण बताया गया है किन्तु इसके आधार का कोई उल्लेख नहीं दिया गया है । श्रीहितदासजी, श्रीगो. चन्द्र लालजी और श्रीगोविन्द अली जी ने इनके परिचयात्मक छप्पय लिखे हैं किन्तु इनकी जाति के सम्बन्ध में उनमें भी कुछ संकेत नहीं है । चाचाजी की वाणियों से कुछ ऐसे अस्पष्ट संकेत अवश्य मिलते हैं, जिनसे उनका ब्राह्मण होना ज्ञात होता है ।

इनका शैशव कष्ट के साथ व्यतीत हुआ था और यह अपने माता या पिता के साथ छोटी अवस्था ही में वृन्दावन आ गये थे, यहीं पर इनकी शिक्षा-दीक्षा भी सम्पन्न हुई ।

श्रीहित हरिवंश महाप्रभु का तृतीय अवतार माने जाने वाले समर्थ रसिक एवं वाणीकार गो. श्रीहित रूप लालजी महाराज इनके गुरु थे । गुरु चरणों में इनकी अगाध श्रद्धा थी । अपने प्रत्येक पद में इन्होंने श्रीहितरूपजी को बड़े

प्रेम और श्रद्धा के साथ स्मरण किया है । इन्होंने अपनी छाप ही "वृन्दावन हितरूप" बना ली थी और सर्वत्र इसका ही प्रयोग करते थे । चाचाजी उच्च कोटि के कवि एवं रससिद्ध महात्मा थे, वाणी का एक प्रवाह-सा इनके मुख से निकलता रहता था; यह सरस लीला-प्रसंगों का गान जी भरकर करते थे । सरल ब्रजभाषा में प्रेम के गहन रूपों का सुन्दरतम वर्णन आपकी वाणी की विशेषता है । लीलागान के अतिरिक्त आपने इतिहास-ग्रन्थों उपदेशात्मक पद्यों के सृजन के साथ पुराणों के सुन्दर अंगों के अनुवाद भी किये हैं । आपका बहुत अधिक साहित्य अप्रकाशित है, आपकी वाणी का बहुत ही कम अंश प्रकाशित हुआ है ।

चाचाजी ने बहुत दिनों तक गृहस्थाश्रम में रहकर अन्त में सं. १८०१ में विरक्त वेष ले लिया था, सं. १८१३ तक अखण्ड वृन्दावन वास कर फिर भरतपुर नरेश कृष्णगढ़ नरेश आदि आदि श्रद्धालुओं के राज्यों को पवित्र किया । फर्रुखाबाद तथा दीर्घपुर को भी आपने पवित्र किया । कोसी तथा कामवन में कुछ दिन निवास करके ब्रज चौरासी कोस में भ्रमण करते रहे और सं. १८३६ में कृष्णगढ़ से आने के बाद अन्त समय तक श्री वृन्दावन में ही निवास किया । सं. १८५०-५१ के आसपास श्रीसेवाकुञ्ज में समाज सुनते-सुनते अन्तर्धान हो गये ।

चाचा श्रीवृन्दावनदासजी महाराज आज हम सबके मध्य भले ही स्थूल देह से न हों लेकिन उनके द्वारा ब्रजलीलाओं का जो सरस गान हुआ है, वह पदों के रूप में रसिक-समाज में सदा-सदा के लिए जीवन्त होकर अमर रहेगा ...उनके अपरिसीम उपकारों के लिए ब्रजप्रेमीजन सदा ऋणी ही रहेंगे ....ऐसे रसिक संत-महापुरुषों का ये संसार हमेशा स्मरण-चिन्तन कर नित्य निरन्तर नमन-प्रणाम कर आभार प्रकट करता रहेगा ..... ।

श्रीसखी-सहचरियों की अभिलाषा

(एकदा समये भक्त ललिता करुणामयी । सर्वं च वीक्ष्य संसारं तमो रूपं गतार्थकम् ॥ राधासमीपमागत्य मधुरं वाक्यमब्रवीत् । ॥ ललितोवाच ॥ राधिके भक्त शरणे शृणुष्व वचनं मम । भ्रमन्ति सर्व जीवाश्च विश्वार्णव तमोमये ॥ तेषां क्वापि गतिर्नास्त्युपदेष्टारं विना प्रिये । पृथिव्यां गम्यतेऽस्माभिस्त्रिगुणायां च सुन्दरि ॥)

(सनत्कुमार संहिता – पटल ३३, श्लोक संख्या ५-८)

(नित्य गोलोक धाम में श्रीराधिकारानी विराजमान हैं, उनके समीपस्थ ललिता-विशाखा.....इत्यादि महासखियाँ समावृत रूप से खड़ी हुई हैं ।
उसी समय प्रस्तुत श्लोक "एकदा समये भक्त ललिता करुणामयी । राधा समीपमागत्य मधुरं वाक्यमब्रवीत् ॥" की सुमधुर ध्वनि होती है ।)

ललिताजी – हे स्वामिनी जू ! आपकी नित्य-निरन्तर सब तरह की सेवा-शुश्रूषा करने से आपके अन्तर्मन के भाव ही मेरे मन में आ जाते हैं, तो फिर आपकी मुख्य सह-परिचारिका का कर्तव्य निभाने के कारण कहे बिना रह नहीं पाती हूँ । यदि आपकी कृपामयी आज्ञा हो तो हाथ जोड़कर कुछ निवेदन करना चाहती हूँ ।

श्रीराधा – हे ललिते ! तुम तो मेरी सभी गुप्त-प्रकट लीलाओं की अन्तरंग सहभागिनी होने से मेरी जीवन प्राण स्वरूपा हो । तुम्हारा तो सम्पूर्ण सरस लीलाओं के गोपन-प्राकट्य में सर्वाधिक अधिकार है, इसलिए तुमको तो मुझसे किसी भी प्रकार की आज्ञा लेने की आवश्यकता ही नहीं है, कोई भी बात हो तो बिना किसी संकोच के मुझसे कहा करो ।

ललिताजी – हे प्रियाजू ! संसार में विविध तापों से संतप्त जीवों की सच्ची सुख-शान्ति व परम कल्याण का सबसे सरल-सरस उपाय तो एकमात्र आपकी रसमयी लीलाओं का श्रवण-दर्शन व गुणगान ही है, इसके लिए निष्काम उपदेष्टा (उपदेशक) की अत्यन्त आवश्यकता है । अतः इसके लिए हम सब सखियों को किसी न किसी रूप में भूतल पर चलना चाहिए ।

(सब सखियाँ एक साथ एक स्वर में बोल उठती हैं – 'हे किशोरी जू ! श्रीललिताजी बिलकुल ठीक कह रही हैं, हम सब सखी-सहचरियों की भी यही इच्छा है ।')

"दुतिय सुदेवी सहचरि जानों । महामोहनी मन की मानों ।"

(प्रस्तुत पदांश की सुमधुर ध्वनि गूँजती है ।)

सुदेवीजी – हे श्रीराधे ! आपको तन-मन-वचन से प्रसन्न करने वाली ये 'सुदेवी' भी आपके धरा-धाम की लीला वैचित्री का श्रवण-दर्शन करना चाहती है ।

"चौथी सखी विसाखा ना मुनि ।
जाननिहारि जुगल हिय की गुनि ॥"

विशाखाजी – हे श्रीश्यामाजू ! आपके मनोगत भावानुसार सेवा करने वाली 'विशाखा' दिव्य दम्पत्ति (श्रीराधा-माधव) की विवाह-लीला के दर्शन की अभिलाषा कर रही है ।

"सहचरि पंचमि चंपलता पुनि ।
सब गुन खानि सुजानि सिरोमनि ॥"

चम्पकलताजी – हे राधिके ! आपके स्वरूप-श्रृंगार व सरस लीला-कलाओं में यथानुरूप सहयोग करने वाली 'चम्पकलता' आपकी श्रृंगार-रसमयी लीलाओं में हाथ बँटाना चाहती है ।

"छठी सहचरी चित्रा भारी ।
महा मोद उरभरी अपारी ॥"

चित्रलेखाजी – हे रसेश्वरी ! आपकी रूप माधुरी छवि को नित्य निहारने वाली 'चित्रलेखा' की भूलोक में होने वाली अति अद्भुत लीलाओं की मनमोहिनी छवि देखने की उत्कण्ठा है ।

"सप्तमि सखी तुङ्गविद्या गनि ।
बिसद बिलास कला में बितपनि ॥"

तुंगविद्याजी - हे करुणाशीलिने ! आपके रति कला विलास का गुणगान करने वाली तुंगविद्या आपकी अत्यन्त गुप्त प्रेम लीलाओं का संगीतमय रसगान करना चाहती है ।

"अष्टमि इन्दुलेखा अति जीकी ।
प्यारी सदा प्रीतमा पीकी ॥"

इन्दुलेखाजी – हे प्रियेश्वरी ! आप नित्य दम्पत्ति प्रिया-प्रियतम के ही रस में सराबोर होने वाली 'इन्दुलेखा' आपकी होरी-लीला व विवाह-लीला के साक्षात् दर्शन करना चाहती है ।

श्रीराधिकारानी – हे ललिता-विशाखा इत्यादि मेरी महासखियो ! आप लोगों की हृदयगत अति सरस व परम पावन करने वाली भावनाओं को सुनकर के मेरा तो रोम-रोम प्रफुल्लित हो गया है.....वैसे तो ब्रज-वसुन्धरा में हम सब सखी-सहचरियों के अनेकानेक अंशावतार होते रहते हैं ।

करुणानिधि श्रीनित्य किसोरी करि अनुकम्प कियौ आदेस ।
आईं अग्रवर्ति अलबेली, धरि बर इच्छा विग्रह वेस ॥

श्रीराधारानी – आज मैं सब सखियों के मध्य अपने परम लाड़ले एक ऐसे भक्त के बारे में बताऊँगी, जिसने हमारे प्रेम माधुर्य युक्त रसमय श्रृंगार की ही लीलाओं का साक्षात् अवलोकन करके लिखा है ।

ललिताजी – हे श्रीश्यामाजू ! ऐसा कौन है जो आपका इतना प्यारा भक्त है ?

विशाखाजी – हाँ श्यामाजू ! उस अद्भुत भक्त के भाव हम सबको भी अवगत कराएँ ?

श्रीराधारानी – हे सखियो ! वह है मेरा अतिशय प्रिय भक्त – 'वृन्दावनदास' , लोग उसे 'चाचा वृन्दावनदासजी' के नाम से जानते व पुकारते हैं ।

एकबार 'वृन्दावनदास' श्रीराधावल्लभजी के दर्शन करने के लिए गये तो उनसे किसी व्यक्ति ने कहा कि राधावल्लभजी के सम्पूर्ण दर्शन करना लेकिन ठाकुरजी के नेत्रों से अपने नेत्र मत मिलाना, नहीं तो तुम किसी काम के नहीं रहोगे । वृन्दावनदासजी ने सोचा कि मैं किसी काम का रहूँ या न रहूँ लेकिन ठाकुरजी के नेत्रों से नेत्र अवश्य ही मिलाऊँगा, उन्हें खूब अच्छी तरह से मन भर कर देखूँगा । मन में ऐसा निश्चय करके उन्होंने ठाकुरजी के नेत्रों से नेत्र मिलाये, नेत्रों से नेत्र मिलाते ही वे संसार से विरक्त होने लगे और सदा भगवान् का ही चिन्तन करने लगे ।

ललिता – हे प्यारी जू ! हमारे प्यारेजू के नेत्रों में जादू है, जो भी जीव उनसे नेत्र मिलाता है, वह उनका ही बनकर रह जाता है ।

श्रीजी – एकबार राधावल्लभजी का भोग लग रहा था, उसी समय वहाँ वृन्दावनदासजी पहुँच गये तो उनके गुरुजी ने वृन्दावनदास जी से कहा कि तुम ठाकुरजी के भोग का कोई पद सुनाओ । गुरुदेव की आज्ञा सुनकर वृन्दावनदासजी मौन रहे, दूसरी बार गुरुजी ने यही बात कही तो वृन्दावन दास जी ने कहा कि मुझे पदगान करना नहीं आता है ।

गुरुदेव ने इनसे कहा कि तू वाणी का पाठ नहीं करता है तो जाकर यमुनाजी में डूब मर ।

वृन्दावनदासजी ने सोचा कि गुरुजी की एक आज्ञा का पालन नहीं कर सका, मुझे तो लज्जावश डूबकर मर जाना चाहिए । उसी समय वे यमुनाजी में कूद गये, तैरना आता नहीं था, अचेत अवस्था में बहते हुए मानसरोवर के पास पहुँच गये । वहीं हम सब सखियाँ जल-क्रीड़ा कर रही थीं । तुम्हें याद है ललिता कि तुम मेरे कहने पर कुछ सखियों के साथ उन्हें यमुना से निकालकर बाहर लायी ।

ललिता – हाँ प्यारी जू ! याद है, वे उस समय अचेत अवस्था में थे, आपने उनके सिर पर अपना कृपामय करकमल रखकर उन्हें चेतना दिलाई ।

श्रीजी – हाँ ललिता ! चेतना में आते ही उनके ज्ञान के चक्षु खुल गये, इनकी वाणी मुखरित हो उठी, सहज ही गुणगान करने लगे । वहाँ से लौटकर श्रीगुरुदेव भगवान् को स्वरचित नए-नए पदों में लीलागान सुनाने लगे । गुरु श्रीहितरूपलालजी अत्यधिक प्रसन्न होकर आशीर्वचन कहा कि ऐसे ही आजीवन राधामाधव की सरस लीलाओं को गाते रहो । इसके फलस्वरूप वे इतने बड़े रससिद्ध संत बन गए कि स्वप्न में जो भी लीला दिखाई देती, वह जागने के बाद भी याद बनी रहती और उसका यथार्थ वर्णन कर देते थे । इसके बाद आगे चलकर उन्होंने सम्पूर्ण ब्रजमण्डल के रसिक समाज में सर्वाधिक ब्रज साहित्य की संरचना कर ब्रज लीलाओं का रस गान किया है ।

अब तुम सब सखियों को उन सरस लीलाओं का दर्शन व साक्षात् सन्निधि प्राप्त करने से सहज सहभागिता व मनोवांछित लाभ मिल जाएगा ।

(सब सखियाँ एक साथ जयघोष करती हैं .....परम करुणामयी सरकार की - जय हो.....) (पर्दा गिर जाता है)

चाचा श्रीवृन्दावनदासजी का हितोपदेश

('लाड़ सागर' व 'ब्रज प्रेमानन्द सागर' जैसे अद्वितीय रस ग्रन्थों के प्रणयनकर्ता 'चाचा श्रीवृन्दावनदासजी महाराज' कथा कह रहे हैं, श्रोतागण उनसे प्रश्न कर रहे हैं । उच्च आसन पर चाचाजी महाराज विराजमान हैं । श्रोताओं में बालक-बालिकायें, नर-नारियाँ, साधु-सन्तजन इत्यादि हैं, कुछ सुधी साधक प्रश्न करते हैं)

साधु – महाराजजी ! हमने सुना है कि श्रीराधा-कृष्ण का विवाह भाण्डीर वन में ब्रह्माजी ने करवाया है ?

युवा साधक – प्रभुजी ! लोगों ने हमें बताया है कि राधा-कृष्ण का विवाह हुआ ही नहीं ?

१ भक्त – हे भगवन् ! समाज में स्वकीया-परकीया के भावों से लोगों में मतभेद है, आप वास्तविक भाव का बोध करायें ।

सन्तजी – हे महात्मन् ! श्रीराधा-माधव की विवाह लीला की तत्त्वतः सच्चाई क्या है ? आप कृपा करके बतायें ।

(इन विविध प्रश्नों को सुन करके चाचा वृन्दावनदासजी महाराज भक्तिमय भावों में डूब गये, उनके नेत्र सजल हो गये, फिर कुछ क्षण में अपने स्वरूप को सँभालकर प्रेम से गद्गद वाणी में बोले) –

(सरस दोहों के गाने के स्वर गूँजते हैं । दोहों का स्वर गान ही चाचाजी का भाव प्रकट करते हैं ।)

श्रवण-कथन बेली ललित उपजै उर अनुराग । वृन्दावन हित रूप बलि भक्ति जगमगै भाग ॥

श्रीहित रूप कृपाल गुरु दीनी सुमति जगाइ । वृन्दावन हित प्रीति सौं बरनें चरित अघाइ ॥

चाचा श्रीवृन्दावनदासजी – सबसे पहले तो भैया, मैं आप सब लोगों को हृदय से कोटि-कोटि नमन करता हूँ कि आप लोगों ने मुझे श्रीसद्गुरुदेव व उनकी असीम अहैतुकी कृपा-करुणा का स्मरण दिला दिया । जीवन में श्रवण-कथन रूपी सरस भक्तिमयी लता का आविर्भाव श्रीसन्त-कृपा से ही होता है । आप सबके सभी प्रश्नों का सरस भावमय उत्तर श्रीइष्ट-कृपा-लब्ध लिखित-कथित भावों को श्रद्धापूर्वक सुनने मात्र से सहज ही मिल जाएगा ।

(तभी चाचाजी द्वारा रचित दोहों की सुमधुर ध्वनि सुनाई पड़ती है.....)

रस रसकनि हित विस्तरन प्रगटे साँवल गौर । या रस बिनु दूजौ कहाँ हो रसिकनि कौं ठौर ॥
बरसाने नन्दगाम कौ नातौ सजन अनादि । इहि तजि भजै जो आन विधि रसिक कहावै बादि ॥
नंदीश्वर वृषभानुपुर बरन्यौ कौतुक रंग । वृन्दावन हित रूप बलि जामें सुख जु अभंग ॥
कीरति जसुमति कौ मिल्यौ मधुर अलौकिक प्रेम । सर्वोपरि पुनि लखि परत लोक रीति मनु नेम ॥

चाचा वृन्दावनदासजी - श्रीब्रजमण्डल धाम में 'बरसाना-नन्दगाँव' – ये प्रेम माधुर्य की मुख्य प्राणाधार स्वरूपा परम रसमयी भूमि हैं, जो समस्त रस लीलाओं के सार स्वरूप 'राधामाधव-विवाहलीला' की केन्द्र भूमि है, जिसके स्मरण-चिन्तन भाव से ही जीवों का अन्तःकरण रस से भर जाता है, फिर यदि यहाँ की प्रेम लीला सिन्धु की एक भी बिन्दु का आस्वादन करने को मिल जाए तो फिर कहना ही क्या है ? उस जीव के सभी तर्क-वितर्क नष्ट हो जायेंगे, सच्चा रसिक बन जाएगा ।

(सभी श्रोतागण जोर से एक साथ जय-जयकार करते हैं – परम रसिक चाचा श्रीवृन्दावनदासजी महाराज की जय हो)

(पुनः चाचाजी के रचित दोहों की सुमधुर ध्वनि सुनाई पड़ती है)

सूधे अक्षर प्रेम के उक्ति-जुक्ति कछु नाहिं । नेही लेहु बिचारि कैं जो संपति या माहिं ॥
निकट कुञ्ज सेवा जहाँ श्रीवृन्दावन धाम । तहाँ ग्रन्थ पूरन कियौ रसिकनि मन विश्राम ॥

चाचा वृन्दावनदासजी – अरे भैयाओ ! हमने अति सरल-सहज भाषा में राधा-कृष्ण विवाह जैसी सरस लीलाओं का वर्णन 'ब्रज प्रेमानन्द सागर' व 'लाड़ सागर' जैसे ग्रन्थों में किया है, जिसे कहने-सुनने से सच्चे रसिक जन वास्तविक प्रेम-सम्पत्ति को प्राप्तकर दिव्यानन्द में सदा के लिए डूब जायेंगे और ऐसे भक्तों-सन्तों के दर्शन-सत्संग से चराचर जीवों का सहज कल्याण होगा ।

२ भक्त – हे गुरुदेव ! राधाकृष्ण-विवाह के अनेक रूप क्यों हैं ?

चाचा वृन्दावनदासजी – प्रिय भक्तजनों ! श्रीराधा व श्रीकृष्ण की विवाह लीला जितनी रसमयी है, उतनी ही गूढ़ात्मक है क्योंकि भूतल पर प्रायः लोग इसके वास्तविक रहस्य को नहीं जानते हैं । रसास्वादन की विविधता के कारण इसके अनेक भावमय स्वरूप हो जाते हैं; ब्रजभूमि के रसिक संतजन इस सरस लीला का 'स्वकीया, परकीया, नित्य निकुँज लीला व अष्टयाम लीला' – इत्यादि भावों के द्वारा गुणगान करते हैं ।

३ भक्त – हे गुरुवर ! अब आप हमें स्वकीया भाव और परकीया भाव के बारे में बताने की कृपा करें ।

चाचा वृन्दावनदासजी – हे मेरे प्रिय श्रोताओ ! ध्यान से समझो – "जिसके साथ विवाह होता है, उसे स्वकीया कहते हैं; जैसे श्रीराधारानी का श्रीकृष्ण के साथ विवाह हुआ, ये स्वकीया भाव है किन्तु जहाँ विवाह हुआ है, उससे प्रेम न करके किसी दूसरे से प्रेम सम्बन्ध स्थापित करना, इसे परकीया कहते हैं; जैसे ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार वास्तविक नहीं अपितु छाया राधा (श्रीराधारानी की छाया) का विवाह जाववट में रायाण अथवा अभिमन्यु नामक गोप से हुआ था किन्तु फिर भी उनका सच्चा प्रेम-सम्बन्ध श्रीकृष्ण से ही था, ये परकीया भाव है । परकीया केवल भाव है, वस्तुतः तो श्रीराधारानी एवं ब्रजगोपिकायें कभी भी श्रीकृष्ण की परकीया नहीं हो सकतीं, वे तो स्वकीया ही हैं । लीला के आस्वादन की विभिन्न शैलियाँ हैं; शास्त्र का सिद्धान्त है – 'रस्यते आस्वाद्यते इति रसः' 'जो आस्वाद्य है, वह रस है' के भाव से परकीया की उत्पत्ति हुई है । 'रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति ।' 'जहाँ नित्य दाम्पत्य है' के भाव से स्वकीया की उत्पत्ति होती है । आस्वादन की विभिन्नता से ही स्वकीया-परकीया आदि की लीलायें हुई हैं ।"

४ भक्त – हे गुरुश्रेष्ठ ! परकीया लीला का गान कौन-से सन्तों ने किया है ?

चाचा वृन्दावनदासजी – हे प्यारे श्रोताओ ! प्रायः गौड़ीय वैष्णव-संतजन परकीया भाव को ही मानते हैं । श्रीरूपगोस्वामीजी ने अपने ग्रन्थों में श्रीराधा-माधव की परकीया लीला को गाया है । ये कृष्णावतार श्रीचैतन्यमहाप्रभु के अनन्य परिकर थे और माध्व- गौड़ेश्वर सम्प्रदाय के ग्रन्थों के अनुसार ये नित्य लीला में राधारानी की मंजरी सखियों में सबसे प्रधान श्रीरूप मंजरी सखी के ही अवतार थे ।

१ साध्वी – महाराजजी ! आपकी कथामृत का पान करके हम सब बड़े ही आनन्दित हो रहे हैं । अब आप हमें निकुंज लीला तथा अष्टयाम लीला के अन्तर्गत श्रीराधामाधव-विवाह के बारे में बताइए ।

चाचावृन्दावनदासजी – देखो - नित्य विहारलीला में ब्रज-वृन्दावन धाम की निकुंजों में सखियों द्वारा श्रीराधामाधव की नित्य विवाह-लीला सम्पन्न होती है, इसे निकुंज की विवाहलीला कहते हैं । स्वामी हरिदासजी, श्री हित हरिवंश महाप्रभुजी, श्री हरिरामव्यासजी एवं श्रीहरिव्यासदेवाचार्य आदि महापुरुषों ने नित्य निकुंज में श्रीप्रिया-प्रियतम की विवाहलीला को अपने ग्रन्थों में गाया है ।

'अष्टयामलीला' का अर्थ है - आठ प्रहर अर्थात् दिन-रात की श्यामा-श्याम की लीला, अष्ट पहरों में प्रतिदिन ही संध्याकाल में सखी-सहचरियाँ ब्याहुला अर्थात् राधा-माधव का विवाह करती हैं । इस तरह यह अष्टयाम लीला के अन्तर्गत विवाह लीला है । अनेक महापुरुषों ने इस लीला को गाया है ।

राधा-माधव तो अनादि काल से नित्य दम्पत्ति हैं, उन्हें भला विवाह की क्या आवश्यकता है, वे तो अपने भक्तों को दिव्य आनन्द प्रदान करने के लिए स्वकीया, परकीया, निकुंज और अष्टयाम के अन्तर्गत विवाह लीला करते हैं ।

२ साध्वी – हे सद्गुरुदेव ! श्रीराधा-कृष्ण का स्वकीया विवाह किस प्रकार हुआ ? आपने अपने ग्रन्थों 'लाड़ सागर' और 'श्रीब्रज प्रेमानन्द सागर' में बहुत विस्तार से इसका वर्णन किया है, हमें तो आप संक्षेप में लीला-श्रवण कराएँ ।

चाचा वृन्दावनदासजी – हे प्रिय भक्तो ! श्री राधा-कृष्ण विवाह की रूप रेखा तो उनके जन्म के पहले ही निश्चित हो गई थी ।

१ आराधिका – हे श्रीसद्गुरु भगवन् ! इस रहस्यमय भाव का हमें भी बोध कराएँ ?

चाचा वृन्दावनदासजी – हे श्रोताजनो ! जिस समय राधारानी की माता श्रीकीर्तिजी और श्यामसुन्दर की माता श्रीयशोदाजी गर्भवती थीं तो एक बार वे यमुना स्नान करने के लिए गयी थीं । वहाँ कीर्ति मैया ने यशोदा मैया से कहा कि हम दोनों तो सहेलियाँ हैं, हम दोनों की मित्रता का मधुर सम्बन्ध सदा बना रहे, इसके लिए यदि मेरे पुत्री उत्पन्न हुई और आपके पुत्र उत्पन्न हुआ तो हम लोग उन दोनों का परस्पर विवाह कर देंगी । इस प्रकार इन दोनों माताओं ने एक-दूसरे को अपनी संतानों के मध्य विवाह करने का वचन दे दिया था ।

२ आराधिका – हे महाराजश्री ! युगल रसराज श्रीराधामाधव के विवाह के पूर्व की लीलाओं का भी आनन्द प्रदान करें ।

चाचा वृन्दावनदासजी – हे लीला के रसिकजनो ! कीर्ति-वृषभानुजी के यहाँ श्रीराधारानी प्रकट हुईं और देवकी-वसुदेवजी के यहाँ श्रीकृष्ण प्रकट हुए, जिन्हें कंस के भय से नन्द-यशोदाजी के यहाँ गुप्त रूप से पहुँचा दिया गया । श्रीमद्भागवत के टीकाकार आचार्यों ने श्रीमद्भागवत के श्लोकों से ही सिद्ध किया है कि वस्तुतः जो ब्रजलीलाधारी नन्दनन्दन श्रीकृष्ण थे, वे तो श्रीनन्द बाबा और यशोदा मैया से ही उत्पन्न आत्मज (पुत्र) थे.....शनैः-शनैः राधा-माधव बाल-पौगण्ड व किशोरावस्था को प्राप्त होते हैं ..... अब उनकी सरस बाललीलाएँ व श्रृंगार-रसमयी किशोरावस्था की विवाहलीला इत्यादि का दर्शन करो जो बरसाना-नन्दगाँव में होती हैं । ..... (पर्दा गिर जाता है)

साँझी-लीला में श्रीयशोदा-मिलन

(भानु भवन का सुन्दर दृश्य है, जहाँ श्रीकिशोरीजू के साथ सखी-सहचरियाँ साँझी हेतु पुष्प-चयन के लिए जाने की तैयारियाँ कर रही हैं, सब सज-धज कर आ रही हैं .....)

गोप दुलारिनु को जु अब, आयौ प्रिय त्यौहार । साँझी सब चीतन लगीं, तात भवन दरबार ॥

तिन में राधा मुकुटमणि, सब भईं तार्कें लार । साँझी कौ दिन जांनि कैं, आईं साजि सिंगार ॥

(प्रस्तुत दोहे की सुमधुर ध्वनि आती है.....)

ललिताजी - अरी राधा ! साँझी खेलने का समय समुचित है, अब हम सब शीघ्र चलें पुष्प-चयन के लिए ।

विशाखाजी - हाँ किशोरी जू ! केवल मैया की आज्ञा लेने की देर है.....

(सखीजनों के साथ राधा भी मैया को प्रणाम-नमन करके जाने की आज्ञा लेती हैं व कीर्ति मैया आशीर्वाद देती हैं)

कीर्ति मैया – तुम सबका मंगल हो..... एक बात ध्यान से सुनो..... एक झोली में मेवा-मिष्ठान भर दिए हैं....जब भूख लगै..... सब एक साथ बैठकर मिल-जुल कर जेंव लेना ।

चम्पकलताजी – हाँ मैया ! आपके कृपामय आशीर्वचन से राधा के साथ हम सब सखियाँ आपकी आज्ञा का पालन करती हुई अधिक विलम्ब न करके जल्दी ही लौटेंगी ।

(सब सखियाँ रावड़-पाडर वन पहुँच जाती हैं पुष्प चयन के लिए, चारों ओर खोज करने पर जहाँ-जहाँ फूल मिलते हैं, किलकारी करते (हँसते) हुए उन्हें तोड़ने लगती हैं ।)

चित्रलेखाजी – अरी सखियो ! सबसे अधिक फूल तो उस लता-कुञ्ज के पास हैं ।

तुंगविद्याजी – अरी महाभागा ! ये पुष्प तो इतने ऊँचे हैं, हम इन्हें हाथ से नहीं पकड़ सकतीं ।

रंगदेवीजी – हे चतुर कन्याओ ! पहले तो हम लोग डालियों को झुका करके पुष्पों को ले लेंगी ।

(कुछ पुष्प इतने अधिक ऊँचाई पर थे कि डालियों को झुकाने पर भी नहीं मिल सकते थे, तब सखियाँ परस्पर एक नया खेल रचती हैं)

सुदेवीजी – अरी बहिनो ! फूल अधिक ऊँचाई पर हैं तो क्या हुआ ? हम सब अपनी संगठन-शक्ति का सदुपयोग करेंगी ।

इन्दुलेखाजी – (हँसते हुए...) किसी भी गुण, कला-कार्य में दक्षता की शिक्षा तो बरसाने की सखियों से ही सीखनी चाहिए ।

ललिताजी – अरे ! इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है, सब तो सीखते ही हैं यहाँ से, बड़े-बड़े कलाकार व गुणीजन भी यहाँ की रज को मस्तक पर लगाकर अपने को सौभाग्यशाली समझते हैं ।

विशाखाजी – अब देर न करके, शीघ्र ही चतुराई का स्वांग रच दे .....

(सब सखियाँ परस्पर एक-दूसरे के कन्धे पर चढ़ जाती हैं, जिससे आसानी से पुष्प-चयन कर लेती हैं)

कोउ उँची ते हाथ न आवैं । इक लै एकनि कंध चढ़ावैं ।
तिन तें लिए तारि बिधि भलीं । पुनि ताहू पें आगें चलीं ॥

(मधुर गान होता है)

चम्पकलताजी – अब तो प्रेम सरोवर पास में है, हम लोग वहीं पर भोजन पानी कर लें ।

चित्रलेखाजी – हे राधे ! आप आज्ञा करो, हम सब एक साथ बैठकर पेट-पूजा कर लें ।

राधारानी – हे ललिता-विशाखा ! तुम लोग पलास के पत्तों को तोड़कर अपने हाथों से दोने बनाओ ।

(सब परस्पर प्रसाद वितरण करती हुई, प्रसन्नतापूर्वक फल-मेवाओं का आहार करने लगती हैं, इसी बीच एक सखी कुछ विशेष मीठे फलों को वृक्षों से तोड़कर राधा के हाथ में देती है, श्रीजी उन मधुर फलों की अधिक प्रशंसा कर उनके वृक्षों का नाम व स्थान पूछती हैं तथा उन फलों को सखी द्वारा पुनः मँगवाती हैं ।)

खोल कोथरी दोंना भरौ । ऐसी विधि सब भोजन करौ ॥
खोजि मिष्ट फल वन तें लावैं । ते राधा के हाथ गहावैं ॥
जेंवति कुँवरि भरी अहलाद । कहैं भटू यह अधिक सवाद ॥
ऐसे फल चुनि लावौ और । कौन वृक्ष उपजैं किहि ठौर ॥
लावैं पावैं अचवैं नीर । आगें चली सखिनु लै भीर ॥

(सुमधुर गान)

(सब सखियाँ आहार करने के बाद फूल तोड़ने के लोभ से संकेत वन की ओर चल देती हैं ।)

ललिताजी – अब हम सब संकेत की ओर चलते हैं, वहाँ बहुत से सुन्दर सुगन्धित पुष्प हैं ।

फूलनि लोभ गईं संकेत ।
लखि बन कमनी बढ़यौ हिय हेत ॥
प्यारी बैठीं बट की छांहीं ।
अति आनन्दित भई मन माँहीं ॥ (सुमधुर गान)

(श्रीराधिकारानी एक वट-वृक्ष की छाया में बैठकर विश्राम करने लगती हैं, तभी मधुर स्वरों में बाजे बजने की आवाज सुनाई देती है । कुछ (लगभग आठ-दस) गोप-युवतियाँ श्रीयशोदाजी के साथ पूजन-थाल लिए हुए मंगल-गान करती हुई आ रही थीं ।)

मधुरे बाजे बाजत आवैं ।
वधू वृन्द मिलि मंगल गावैं ॥

विशाखाजी – हे श्यामाजू ! हम सब चलकर देखें कि ये लोग कौन हैं ? कहाँ जा रही हैं ?

(तब तक गोप-युवतियों के समूह से एक गोप-वधू सखियों के पास आकर कहने लगी)

गोप वधू – अरी कुमारियो ! तुम सब गौर वदन रूपिणी किनकी पुत्री हो ?

चम्पकलता – हे वनिते ! ये श्रीवृषभानु राजा की सुकन्या हैं, हम सब इनकी सखियाँ हैं और इन्हीं के साथ सुन्दर शोभा सम्पन्न संकेत वन में पुष्प चयन करने आयी हैं ।

गोपवधू – अरी ! मैं तो कानों से केवल वृषभानुनन्दिनी की महिमा सुनती रहती थी, आज साक्षात् दर्शन करके कृतार्थ हो गयी, धन्य हैं इस सुकन्या के 'माता-पिता' जिन्होंने ऐसी सुपुत्री को जन्म दिया है ।

ललिताजी – आप सब ब्रजवनिताएँ कौन-से गाँव की रहने वाली हैं और कहाँ किस काम से जा रही हैं ?

गोपवधू – नन्दराय की रानी श्रीयशोदाजी के साथ हम सब वधुएँ संकेत देवी का पूजन-वन्दन करने आयी हैं ।

(इतना कहकर गोप-युवती ने यशोदा मैया के पास जाकर के सखियों का समस्त परिचय बताया ।)

यशोदा मैया – संकेत देवी की जय हो ! ..... आज हमें बिना पूजा के ही फल मिल गया है ।

देवी पूजन कौं दई, विप्र वधू जु पठाइ ।
राधा ओर चलीं रवँकि, मुरलीधर की माइ ॥

(यशोदाजी ने पुरोहितानीजी को संकेतदेवी-पूजन के लिए भेज दिया और स्वयं राधा दर्शन के लिए चल पड़ीं)

यशोदाजी – (मन में ही विचार कर रही हैं) हे संकेत देवी ! आपकी अनन्त महिमा कही नहीं जा सकती । आपकी श्रीचरण-सेवा किए बिना ही मेरे मन की अभिलाषा पूरी हो गई । .....(यशोदाजी जितना राधा रूप को निहारती हैं, उतनी ही दर्शन की प्यास बढ़ती जा रही है । वे राधा को अपनी गोद में ले लेती हैं ।)

यशोदाजी – लाली ! तेरी रूप-माधुरी ने मुझे वश में कर लिया है । मेरी तो यही इच्छा है कि तू अब नन्दभवन चल करके सबको आनन्द प्रदान कर । वृषभानु भवन में तेरे जन्म-दिवस में दर्शन के बाद से आज मैं तेरे दर्शन कर पाई हूँ, केवल मंगल सन्देश सुन लेती थी । गृह-कार्यों के कारण आना-जाना नहीं हो पाता था ।

कबहूँ हेरि वदन तन रहैं । कबहूँ गाढ़े अंकनि गहैं ॥
कबहूँ रीझि वारने लेंहि । शिर कर राखि असीसें देहि ॥
पुनि आठौं भाननि की बेटी । बोलि-बोलि सब हीं उर भेंटी ॥
सब कौ लाड़ बिना मित कर्‌यौ । सब के माथे कर वर धर्‌यौ ॥

(मैया यशोदा राधा वदन को बार-बार निहारती हैं, मुख चुम्बन करती हैं, गाढ़ आलिंगन करती हुई गोद में भर लेती हैं और सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देती हैं, फिर यशोदा मैया आठ भानु की पुत्रियों (श्रीवृषभानु बाबा के आठ भाईयों की पुत्रियाँ भी आ जाती हैं) तथा सखीजनों को भी बुला करके वात्सल्य भाव में लाड़-प्यार करती हैं, सबके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देती हैं)

ललिताजी – हे यशोदारानी ! अब हम सबको आप वापस लौटने की आज्ञा करो, क्योंकि आज साँझी-पूजन का दिन है, पुष्पों को तोड़ने में ही बहुत विलम्ब हो गई है, कीरति मैया बाट देख रही होगी ।

यशोदा मैया – ललिता ! रानी कीरति को हमारी ओर से ससम्मान प्रणाम कहना और प्रथम वचन की उन्हें याद दिलवाना । (सखियाँ राधिकारानी के साथ वहाँ से अति शीघ्र चलकर वृषभानुभवन में आ जाती हैं)

(कीरति मैया ने सबको जलपान कराकर अबार (देर) होने का कारण पूछा) –

कीरति मैया – आज तुम सबको इतना अधिक विलम्ब, आश्चर्य है !

आई चतुरा नारि इक, हम सौं गई बतराइ ।
भेद भाव उन महरि कौं, सब ही दियौ जताइ ॥

ललिताजी – मैया ! आज हमें यशोदाजी मिलीं, वे राधा रूप प्रेम में ऐसी डूब गयीं कि लौटने का नाम ही नहीं ले रही थीं, मैं तो बरबस आज्ञा लेकर आई हूँ, चलते समय उन्होंने आपको मंगलमय प्रणाम-वचन बोलते हुए कहा कि कीरति रानी प्रथम-वचनों को स्मरण अवश्य करें ।

वचन किये जे परस्पर, हम तुम खिले सु चित्त ।
रानी ते सुधि कीजियो, हौं सुधि करत जु नित्त ॥

(कीरति रानी को प्रथम वचन याद आने लगते हैं, जिस समय यशोदाजी व कीर्तिजी गर्भवती थीं तो एक बार यमुना स्नान-काल में दोनों ने एक-दूसरे को वचन दिए कि हम अपने पुत्र-पुत्री का परस्पर विवाह करेंगीं ।)

कीर्ति मैया को पूर्व वचन याद आते हैं – (प्रस्तुत वचन जो यमुना-स्नान के समय (यमुनाजी की कलकल ध्वनि की आवाज आ रही है) कहे थे, वही स्मरण आने लगते हैं ..... **यशोदाजी –** अरी कीरति ! यदि तुम्हें पुत्री हुई और मेरे पुत्र हुआ तो मैं अवश्य ही अपने पुत्र का विवाह तुम्हारी पुत्री से करूँगी । **कीर्तिजी –** यशोदाजी ! हम भी अवश्य ही अपनी पुत्री का सम्बन्ध आपके सुपुत्र से सम्पन्न करेंगी ।) इन वचनों को मन में चिन्तन कर रही हैं कीर्ति मैया...) गर्भावस्था के समय श्रीयमुनाजी के किनारे कहे हुए उन वचनों को अच्छी तरह याद करके मैया कीर्ति अत्यन्त मुदित हो जाती हैं, लाली राधा को उठाकर गोद में लेकर प्यार (लाड़-दुलार) करने लगती हैं ।

कीर्ति मैया – राधा ! अब सब सखियों के साथ भोजन व विश्राम करो, तुम सब बहुत श्रमित हो गई होगी ...

(सब सखियाँ कीर्ति मैया की व श्रीकिशोरीजू की जय-जयकार करती हैं .....परम वात्सल्यमयी कीर्ति मैया की ....जय हो .....परमप्रेमप्रदायिनी श्रीकिशोरीजू की ...जय हो ... ।

(पर्दा गिर जाता है ।)

कन्हैया की विवाह-उत्कण्ठा

(श्रीनन्दभवन का दृश्य है, यशोदा मैया को ब्रजगोपियाँ नटखट कन्हैया की चापल्य भरी लीला से पीड़ित होकर प्रतिदिन कोई न कोई उलाहना सुनाने अवश्य आतीं । एक दिन यशोदा मैया ने गोपियों की समस्या का समाधान करने के लिए रोष (क्रोध) जैसा भाव दिखाते हुए कन्हैया (लगभग किशोरावस्था है) को अपने आँगन में पकड़कर डाँट लगाते हुए बोलीं –)

यशोदा मैया – लाला कन्हैया ! तू कभी तो सखाओं को संग में में ले जाकर गोपियों के सूने घरों में घुसकर माखन को खावै और बंदरों को भी खिलावै, और तो और पुरानी-पुरानी माखन की मटकियों को भी फोड़ दे, फिर उनके छोटे-छोटे बच्चों को रुला दे, सोते हुओं को जगा दे, कभी-कभी तो सोते हुए गोपी-ग्वाल की चारपाई से उनकी चोटियों को बाँध दे, इतना ही नहीं, उनके खिरक में जाकर बछड़ों को खोल देवे, जासों वे सब दूध पी जावैं । संध्या को गो दोहन में खाली पात्र लौटें ग्वालबाल । इन सब करतूतों से तेरी-मेरी पूरे ब्रज में बदनामी व हँसी हो रही है ।अब तो तू क्वारौं ही रहैगो, कौन तुझसे अपनी बेटी का विवाह करके उस बेचारी का भविष्य बिगाड़ेगा ?

क्वारौ रहैगौ तू लला ।
को करैगो ब्याह इन गुन भयौ अति लै चला ॥
सुनि करतूत अपनी पूत ।
इन गुननि तू ब्याह चाहै, अरे कान्हर धूत ।
लायक को सनबंध करि है, देखि छल जु सँजूत ॥

कन्हैया – मैया ! सच पूछे तो मेरे इन कार्यों से तेरी व मेरी कीर्ति ही बढ़ेगी, अपयश तो बहुत दूर की बात है, मंगल ही मंगल होयगो, सर्वत्र आनन्द छा जाएगा । ब्रज के राजा नन्द बाबा की लोग अत्यन्त प्रशंसा करेंगे, गोप बालकों में मेरी प्रसिद्धि फैलेगी । मैया ! तू किसी भी प्रकार अप्रसन्न मत होवे, तू तो आनन्दित होकर मेरौ बढ़िया सो श्रृंगार कर दे, जासों मैं विवाह के योग्य सुन्दर दूल्हा बन जाऊँ ।

मैया कौन मो सम और ।
ऐसे काज सँभारिहौं तो यश बढ़ै सब ठौर ॥
गोपनन्दन जिते तिनमें, जानि मोहि सिरमौर ।
जननी करौ जिन गुसां, पाल्यौ मोहि दै दै कौर ॥

(यशोदा मैया अति प्रसन्न चित्त से लाला कन्हैया को उठाकर अपनी गोद में लेकर लाड़-दुलार करने लगती हैं)

यशोदा मैया – लाला ! तू तो मेरे नैनों का प्राण प्यारा है, तेरे बिना तो मुझे एक पल भी अच्छा नहीं लगता । इन ब्रजगोपियों द्वारा तेरी शिकायत करने से मुझे क्रोध का आवेश आ गया ताकि ये गोपियाँ परेशान न हों..... मैं तो सदा सबकी प्रसन्नता ही चाहती हूँ ।

(यशोदा मैया की गोद से उतरकर वहीं मैया के पास बैठकर गोपालजी अपने एक विचित्र स्वप्न की बात बताते हैं)

कृष्ण – मैया ! मैंने रात्रि में एक बहुत विचित्र स्वप्न देखा ।

यशोदा मैया – मेरे लाला ! क्या देखा तूने, मुझे भी बता ।

कृष्ण – मैया ! स्वप्न में मैंने सुन्दर शोभामय सुमनोहर एक नगर देखा ।

बड़ौ कोऊ नगर तामें महल कनक जराइ ।
बसत ऊँचे शैल तर शोभा न बरनी जाइ ॥

(यशोदा मैया कन्हैया के सिर पर हाथ फेरते हुए कहती हैं)

यशोदा मैया – अरे कन्हैया ! ऐसी सुन्दरता से शोभायमान महल तो बरसाना में ही है, अन्यत्र कहीं नहीं है ।

कृष्ण – अरी मैया ! अद्भुत वैभव सम्पन्न उस राजमहल में रूप-गुणों की सिन्धु स्वरूपा एक अनुपम सुकुमारी थी, साथ में वैसी ही अनेक सखी-सहचरियाँ खेल रही थीं ।

"खेलत ताकी पौरि सुन्दरि, रूप गुण समुदाइ ।
ताही सम अगनित सहेलीं, बनी एक बनाइ ॥"

(मैया लाला के गालों पर हाथ फेरते हुए स्नेहपूर्वक कहती हैं -)

यशोदा मैया – मेरे प्यारे लाल ! मुझे तो लगता है, ये वही सब किशोरियाँ होंगी, जिनके प्रेम लीला रज से ब्रज का कण-कण सिंचित है ।

कन्हैया – मेरी मैया ! फिर वे बालायें मुझे देखकर हँसने लगीं, एक ने मुझे अपने पास बुला लिया, एक तो मेरी ओर देख-देखकर फूली नहीं समा रही थी, एक मंद-मंद मुस्कुराते हुए मेरी वंशी लेकर चली गयी ।फिर एक बोली – इतना छोटा सा है और अपने विवाह के लिए व्याकुल रहता है । मैया ! उनमें से एक तो अखिल सौन्दर्य की मधुर छवि-रूपिणी प्रधान सखी थी, जिसने मेरे तन-मन-प्राण की वृत्ति का ही हरण कर लिया, जिसकी रूप माधुरी मेरे हृदय में समा गयी है । एक सहचरी ने मेरे कान में आकर कहा कि हे कुँवर कान्ह ! ये तो तुम्हारी दुल्हिन है ।

अरी मैया ! इतने में ही तूने मुझे जगा दिया, मेरी नींद खुली, तब मैंने समझा कि यह तो स्वप्न था । हे मेरी मैया ! अब तू इस स्वप्न का असली अर्थ मुझे बता दे .....

यशोदा मैया – मेरे लड़ैते लाल ! मेरी मनोकामना गिरिराज महाराज ने पूर्ण कर दी है ।जिस घर की पुत्री प्राप्ति की मैं इच्छा कर रही थी, उसका दर्शन तो तुझे स्वप्न में ही गिरिराजजी ने करा दिया ।मेरी गोवर्धन उपासना सफ़ल हो गयी । यही तेरे स्वप्न दर्शन का अर्थ (प्रयोजन) है ।

लड़ैते सुपन अर्थ मैं पायौ ।
मो बांच्छित गिरिराज करैगौ, जो नित दूध न्हायौ ।
जा घर की अभिलाष करति हौं, सो तुहि दई दिखायौ ॥

(उसी समय वहाँ रोहिणी मैया आ जाती हैं)

रोहिणीजी – अरी यशोदे ! आज लाला कन्हैया के साथ में बहुत प्रसन्न हो रही हो, क्या बात है ?

यशोदा मैया – हे रोहिणी रानी ! हम लोगों ने जो गिरि गोवर्धन की परिक्रमा लगायी व उनका पूजन-अर्चन किया है, उसी का फल है कि कन्हैया को स्वप्न में भी वही दिखायी दिया है, जो मेरी हार्दिक अभिलाषा थी ।

(रोहिणीजी को कान में चुपचाप सब कुछ सार रूप में बता देती हैं यशोदा मैया.....)

रोहिणीजी – हे यशोदे ! तब तो हम सबको आराधना और अधिक करनी है, ये असली आराधना का ही परिणाम है ।

(तब तक वहीँ नन्दबाबा बलरामजी को साथ में लेकर आ जाते हैं । जब नन्द बाबा बैठ जाते हैं तो कृष्ण-बलराम बाबा की गोद में बैठ जाते हैं । नन्द बाबा दोनों के सिर पर हाथ फेरते हुए स्नेह करते हैं ।)

यशोदा मैया – (नन्दबाबा से कहती हैं) – कन्हैया अभी से ही विवाह के लिए उतावला हो रहा है, इसीलिए सभी सखा इसे चिढ़ाते हैं ।

नन्द बाबा – अरे लाला ! तू दाऊ की बात नहीं मानता है, इसलिए तेरे विवाह की बरात में मैं तो नहीं जाऊँगा ।

(ये बात सुनकर कृष्ण दोनों हाथों से आँखें मीड़कर रोने लगे)

कृष्ण – (रोते हुए.....) नहीं बाबा ! .....नहीं.....अब मैं दाऊ दादा की आज्ञा का पूरी तरह पालन करूँगा ।

नन्द बाबा – अच्छा तो कन्हैया ! अब तू रोना बिलकुल बन्द कर दे । अब तू चंचलता को छोड़कर गम्भीर-शान्तचित्त होकर अच्छा बालक बन जा ।

कृष्ण – बाबा ! अब मैं आप सब बड़े लोगों का आदर करते हुए आज्ञापालन करूँगा ।

नन्द बाबा – तब तो कन्हैया ! तेरी बरात सबसे बड़ी और सबसे अच्छी होगी । तेरे विवाह के होने से बरसाना-नन्दगाँव का रिश्ता सनातन व अद्वितीय होगा ।

(फिर 'कन्हैया' यशोदा मैया के पास आकर के अपनी एक घटना के बारे में कहने लगते हैं...)

नन्दलाल – अरी मैया ! एक विशेष बात बताऊँ, आज मुझे जंगल में गौ चारण करते समय एक ज्योतिषी मिला ।वह मेरे हाथ की रेखाओं को देखकर अति आनन्द में भर गया और बोला कि कान्हा ! तेरे शुभ लक्षण बता रहे हैं कि बहुत जल्दी तेरा विवाह होगा, गौ सेवा में तेरी रुचि बढ़ेगी, जिससे ब्रज की रक्षा होगी । सबसे बड़े गोपराज की कन्या, जो सुशीला, परम रूपवती होगी, जिसके स्वरूप प्रकाश से नन्द महल जगमगा जाएगा ।

(मैया ने आनन्दित होकर कन्हैया को गोदी में ले लिया)

यशोदा मैया – लाला कन्हैया ! अब तो सब तरह से शुभ सगुन दिखायी देने लगे हैं । इष्टदेव हमारे लिए हर प्रकार से अनुकूल हो गये हैं ।

कन्हैया – मैया ! तू मेरी विवाह-विधि किस तरह से करेगी ? तू कितने लड्डुओं से मेरी गोद भरेगी ?

यशोदा मैया – (हँसते हुए ...) मेरे लाडले ! जब सन्त-गुरुजनों की सच्ची कृपा होती है, तो घर में भक्ति-वैभव अपने आप बढ़ता चला जाता है ।अब तो विधि-विधान की कोई चिन्ता ही नहीं है..... नन्दगाँव निवासियों का परम मंगलमय आनन्द ही आनन्द है ।

(उसी समय नन्दगाँव के बालक-युवा-वृद्ध ब्रजवासी आ जाते हैं)

ब्रजवासीजन – हम सब अपने इष्ट गिरिराजजी से यही याचना करते हैं, यही भीख माँगते हैं कि हम सब ब्रजवासियों के आज तक जो भी पुण्य कर्म हुए हों, उन सबके फल रूप में हम राधा-कृष्ण की सगाई-सम्बन्ध देखना चाहते हैं । ये अमर जोड़ी हम नन्दगाँव-बरसानावासियों को प्रेम-आनन्द प्रदान कर हर तरह की सुख-समृद्धि से सम्पन्न करेगी ।

(मोहन लाल (श्रीकृष्ण) की दादी वरेयसीजी थीं, वे यशोदा मैया के साथ प्रतिदिन गिरिराजजी की पूजा-अर्चना करने जाती हैं और वरदान में यही माँगती हैं -)

दादी वरेयसीजी – हे गिरिराज महाराज ! मेरे पौत्र का विवाह सम्बन्ध वृषभानु की पुत्री से हो, मैं अपने नेत्रों से यही देखना चाहती हूँ ।

यशोदा मैया – हे गोवर्धन महाराज ! आप सदा से अपने सेवक-सेविकाओं की कामनायें पूर्ण करते आये हैं । मुझे पूर्ण विश्वास है कि हमारी भावनाएं भी अवश्य ही शीघ्र पूर्ण होंगी आपकी कृपा से ।

(यशोदा मैया गिरिराज महाराज की जयकार लगाती हैं – बोलो गिरिराज महाराज की जय हो)

(पर्दा गिर जाता है)

श्रीराधाकृष्ण-विवाहलीला

(अब तो अति शीघ्र समय-समय पर शुभ मुहूर्त में क्रमशः तिलक-लगन-तेल इत्यादि मंगलमय कार्यक्रम सम्पन्न होते हैं । इसके बाद विवाह हेतु नन्दगाँव से बरसाने के लिए बरात प्रस्थान की तैयारियाँ होने लगती हैं)

यह मंगल दिन ब्याह कौ, भयौ धन्य ते धन्य । कै सुकृत ब्रजराज कौ, फल्यौ गोप परजन्य ॥

कृष्ण ब्याह उत्कण्ठा भारी । सुविधि सिंगारे पुर नर नारी ॥ (संगीतमय गान)

(नन्दभवन के आँगन में ब्रज-युवतियाँ मंगलमय गान कर रही हैं । गोबर से लीपकर चौक की रचना हुई है, इतने में श्रीगर्गाचार्यजी आ जाते हैं -)

श्रीगर्गाचार्यजी – ब्रजदेवियो ! इस चौक पर रखने के लिए एक पट्टा का प्रबन्ध करो ।

ब्रजयुवती – हाँ, आचार्यजी ! अभी लाती हूँ ।

(पट्टे पर बरना नन्दलाल को बैठाया जाता है । सुहागवती देवियाँ कन्हैया को तेल चढाने लगीं -)

प्रथम सुहागिनि तेल चढावैं ।
हाथ हथ्यौंना अति छबि पावैं ॥ (संगीतमय गान)

(इसमें युवतियाँ तेल चढ़ने के मंगल गीत गाती हैं)

(तेल चढ़ने के बाद नाइन और ठकुराइनें कन्हैया के शरीर पर हल्दी लगाती हैं)

इसके बाद श्यामसुन्दर का उबटन होता है ....

पुनि उबटति तन सुन्दर नाइनि ।
नगर कहावै जु ठकु राइनि ॥
वदन निहारि परम सुख पावै ।
नाइनि अपनौ भाग मनावै ॥ (संगीतमय गान)

(ब्रज-युवतियाँ उबटन के मंगल गीत गाती हैं ...)

कृष्ण की काकी-ताई भी वहीँ आ जाती हैं । विशेष कौतुकमय वातावरण बन जाता है, फिर मोहनलाल का स्नान कराया जाता है – **उबटि न्हायौ मोहन बरनां ।**

तन लावण्य विश्व मन हरना ॥

बुआ ने बहुत सुन्दर पान का बीड़ा बनाकर अपने भतीजे को दिया । कुछ गोपियों ने लाला को सुगन्धित इत्र-फुलेल लगाया, किसी ने हाथों में मेंहदी रच दी ।

अलक फुलेल सग बगो कीनी ।
मँहदी करनि अधिक छबि दीनी ॥

नाइन ने श्यामसुन्दर के चरणों में महावर लगाया, बुआ ने लाला को दूलह के वस्त्र पहनाये, सिर पर हीरा जड़ी पगड़ी (पाग) पहनाई । गले में पाँच प्रकार के पुष्पों से बनी वैजयन्ती माला पहनाई गयी । हाथों में गुलाबी रंग का रुमाल दिया । मस्तक पर मौर (सेहरा) धारण कराया गया । बुआ ने दूल्हा वेष में सजे लालजी की आरती उतारी । ऋषि-मुनि वेद मन्त्रों का उच्चारण करने लगे, वन्दीजन स्तुति, भाट लोग व ढाँढ़ी-ढाँढ़िनें कुल-वंश-परम्परा की महिमा को बखानकर यश गान करने लगे । उन्हें बहुत से वस्त्र-आभूषण इत्यादि भेंट में दिए गये ।

बड़े-बड़े देवगण भी अपने देवतापन को धिक्कार रहे हैं कि हम भी यदि गोप-ग्वाले होते तो कृष्ण की बरात में सम्मिलित होते । इसलिए देवी-देवता भी वेष बदल-बदलकर ग्वालिनें व ग्वालाओं का रूप बनाकर के आने लगे.....

मुनिजनों के द्वारा शुभ मुहूर्त बताने पर नन्दभवन के आँगन में घोड़ी आ गयी । मधुमंगल ने पान का बीड़ा बनाकर कृष्ण को खिलाया । नव दूलह को घोड़ी पर चढ़ाया गया, ब्रज बालायें व ब्रज वधुएँ मंगल गीत गाने लगीं.....(शास्त्रीय पद्धति से मंगल गान होता है)

अब बरात के योग्य बाजे बजने लगे – (टोल के टोल बहुत से बाजे बज रहे हैं)

सुबल व सुबाहु सखा श्यामसुन्दर के सिर पर चँवर डुराने लगे । मधुमंगल लाला के सिर के ऊपर छत्र तानकर चलने लगा ।

नन्दबाबा अपने भाइयों (नौ नन्द) सहित पालकियों पर बैठ गये । अनेक राजाओं के दल बरात के साथ चले । कृष्ण के नाना सुमुखजी हाथी पर विराजमान हुए, कृष्ण के मामा घोड़े पर सवार होकर, उसे नचाते हुए चले ।

कृष्ण-बलराम हाथी पर विराजमान हुए, रथ व घोड़ों की सेना भी आगे बढ़ी । ऊँट मोरों की तरह नाच रहे हैं ।गोप व ग्वालबाल बहुत सा सामान छकड़ों में रखे हुए हैं ॥

नन्दगाँव की युवतियाँ व यशोदा-रोहिणीजी महल की छत पर चढ़कर बरात की शोभा देख रही हैं ।

बरसाना व नन्दगाँव की विशेष शोभा बढ़ गयी है । बरसाने में बारात आने के बाद क्रमशः विवाह के विविध कार्यक्रम सम्पन्न होते हैं ...

फिर विवाह-मण्डप में दूल्हा-दुल्हिन की भाँवरे पड़ती हैं – (विवाह के मंगल-गीतों का गान होता है ...)

जब लागै भाँवरि विधि साजन,
घर घर बजे धातु के भाजन ।
अवनी हूं हिय हरष जु बढ्यौ,
सब चित चाह अलौकिक चढ्यौ ।
गहरैं घाव निसाननि परैं,
अतुलित आनंद सब उर भरैं ॥
जहाँ तहाँ मुनि वेदनि उचरैं,
राधा हरि की भाँवरि परैं ।
देव विमाननि बैठे हरषैं,
तिन की वधू कुसुम गन वरषैं ॥
पाछें बरनाँ आगें बरनीं,
प्रथमहि भाँवरि इहि विधि करनी
पहिल बीज आनन्द रस बयौ,
दूजी भाँवरि अँकुर भयौ ॥
तीजी भाँवरि गोभा सरस्यौ,
चौथी भाँवरि विरवा दरस्यौ ।
लगे फूल जब पाँचई दई,
भाँवरि छटी लगी रस जई ।
सातई भाँवरि फल भल भयौ,
आनन्द प्रेम अधिक बढ़ि गयौ ।
दहुं उर मरमी हरषी सखी,
बर बरनीं उर लाग जु लखी ॥

मुनिवर अज्ञा जिहि विधि दीनी,
सातौं भाँवरि तिहि विधि कीनी
मानि आइ आरतौ उतारयौ,
न्यौंछावरि करि बहु धन बारयौ
जै जै धुनि त्रिभुवन में भई,
सखी दुहुँनि भीतर लै गई ।
अरघ बढ़ाइ भवन में लये,
पंच नाद पुनि ता छिन भये ॥
कपट के देव पुजवात बाला,
चतुर समझि मुसके नन्दलाला ।
बचन हाँसि के भामिनि कहैं,
लाल सकुचि मौंगे ह्वै रहैं ॥
कीरति विविध वारनैं लीये,
न्यौंछावरि करि रतन जु दीये ।
दोहा – बनी बनाँ छबि पाव ही, नन्द राइ कें अंक ।
कंचन गिरि में दरसई, मानौं उभय मयंक ॥
देखन तिन कौ अरबरत, ब्रज जन चारु चकोर ।
मुख मयूष बरषत सुधा, चित चोरत बरजोर ॥
गौर स्याम सोभा अवधि, सब कोउ करत प्रशंस ।
हियो सिरावन रस वरषि, ये दोउ श्रीहरिवंश ॥

इस प्रकार से नित्य दम्पत्ति श्रीराधामाधव की विवाह-लीला सरसता से सम्पन्न होती है ...।

सब लोग जोर से जयकार करते हैं – बोलो - नित्य नवीन दूल्हा-दुल्हिन 'श्रीराधामाधव युगल सरकार' की .....जय हो ..... दिव्य दम्पत्ति श्रीप्रिया-प्रियतम की ....जय हो....।

वास्तविक ब्रजप्रेम-निष्ठा

बाबाश्री के सत्संग (१९ दिसम्बर २०१९) से संकलित

एक धामनिष्ठ व्यक्ति को, उपासक को धाम में ही अखण्ड निवास करना चाहिए । यही विश्वास उसको भगवद्धाम की प्राप्ति कराता है और नित्य विहार की प्राप्ति कराता है । इस बात को नारदजी ने पद्म पुराणोक्त भागवतमाहात्म्य में कहा है, जब साक्षात् मूर्तिमती भक्ति महारानी कर्नाटक, महाराष्ट्र और गुजरात होते हुए श्रीवृन्दावन पहुँची । इन सब स्थानों पर भ्रमण करने पर भक्ति महारानी बूढ़ी हो गई थीं और वृन्दावन धाम में पहुँचकर वही वृद्धा भक्ति तरुणी (युवती) बन गईं और उसे देखकर स्वयं नारदजी ने कहा –

वृन्दावनस्य संयोगात्पुनस्त्वं तरुणी नवा ।
धन्यं वृन्दावनं तेन भक्तिर्नृत्यति यत्र च ॥

(श्रीभागवतमाहात्म्य १/६१)

यह आश्चर्य है कि एक बूढ़ी स्त्री, जिसको मैंने देखा था, अब युवती बन गयी है । ऐसा क्यों हुआ ? यह धाम धन्य है ।

यद्यपि धाम का जो प्राकृत रूप है, यहाँ की मिट्टी है, यहाँ के वृक्ष हैं, वे वैसे के वैसे ही हैं । वे हमको दिव्य नहीं दिखायी पड़ रहे हैं किन्तु इस दिखाई देने वाले धाम का बहुत अधिक महत्त्व है, यह धाम तुमको दिव्य दिखाई पड़ेगा, जब तुम विश्वासपूर्वक इसका सेवन करोगे । यह बात मैं केवल पुस्तक पढ़कर ही नहीं कह रहा हूँ, कुछ-कुछ मुझको अनुभव भी हुआ । चार-पाँच बार डॉक्टरों ने मुझको लिखकर दिया था कि अब आपका बचना मुश्किल है किन्तु विचित्र लीला हुई, न केवल मैं बच गया, बल्कि अब कथा भी कह रहा हूँ, गा भी रहा हूँ । यह धाम का प्रत्यक्ष चमत्कार है और इसी बात को नारदजी कहते हैं –

'धन्यं वृन्दावनं तेन भक्तिर्नृत्यति यत्र च ।'

यहाँ भक्ति साक्षात् नृत्य करती है । भक्ति देवी ने स्वयं नारदजी से कहा –

वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी ।
जाताहं युवती सम्यक्प्रेष्ठरूपा तु साम्प्रतम् ॥

(श्रीभागवतमाहात्म्य १/५०)

इसी बात से इस सिद्धान्त को प्रतिपादन करने के लिए महावाणी का यह पद है –

यही है यही है भूलि भरमो न कोउ,
भूलि भरमे ते भव भटकि मरिहौ ।

इस ब्रज-वृन्दावन धाम के प्रति यदि संशय किया तो तुम निश्चय ही संसार में भटकते रहोगे ।

लाड़ली-लाल के नित्य सुखसार बिन,
कौन बिधि वार ते पार परिहौ ॥

हे मानव ! इस धाम के आश्रय के बिना तुम भव में भटकते रहोगे । भवसागर को पार नहीं कर पाओगे । इसलिए –

एक अनन्य की टेक उर में धरौ,
परिहरौ भर्म ज्यों फूल-फरिहौ ।

धाम के आश्रय से फूलोगे-फलोगे । फलना माने फलों की प्राप्ति होगी, ठाकुर-श्रीजी का दर्शन होगा, उनकी लीला की प्राप्ति होगी । फूलना-फलना का यह भाव है । फूलना-फलना का यह भाव नहीं है कि पैसा मिलेगा, माया मिलेगी; इसी बात को इस पद की चौथी कड़ी में खोल दिया गया है कि तुम्हें क्या मिलेगा ?

श्रीहरिप्रिया के परम पद पास ही,
आसु अनिवास ही वास करिहौ ॥

परम पद अर्थात् नित्य धाम की तुम्हें प्राप्ति होगी, इसलिए अनन्य बन जाओ और उसकी टेक हृदय में धारण कर लो । टेक माने सारा संसार छूट जाये और यहाँ तक कि सब भगवद्धाम भी छोड़ दो । इसी धाम में रहते हुए प्रभु से याचना करो –

अहो बिधना तोपैं अँचरा पसारि माँगौं,
जनम-जनम दीजै याही ब्रज बसिबौ ।

हे प्रभो ! हमारा आगे जहाँ भी जन्म हो, इसी ब्रज में हो, जो दिखायी पड़ रहा है । यह लगता है प्राकृत किन्तु है नहीं । हे प्रभो ! इसी ब्रज में हमें जन्म देना ।

अहीर की जाति समीप नन्द घर,
घरी घरी स्याम हेरि हेरि हँसिवौ ॥
दधि के दान मिस ब्रज की बीथिनि में,
झक झोरनि अंग-अंग कौ परसिवौ ।

नन्दगाँव में हमें अहीर बनाना, नन्दघर के पास में, जिससे उठते-बैठते हमें श्यामसुन्दर के दर्शन होंगे और मैं देखूँगा कि हे कृष्ण ! तुम दही का दान ले रहे हो । इन ब्रज की गलियों में दान लेने के समय तुम ब्रजगोपियों को पकड़कर झकझोरते हो, उनके अंगों को स्पर्श करते हो ।

छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल,
सरद रैनि रस-रास को बिलसिवौ ॥

यह ब्रज उपासना महावाणी में सिद्धान्त सुख के पाँचवें अध्याय में गाई गयी है । इसका तात्पर्य यह है कि इसी ब्रज में रहकर के उपासना करो, आराधना करो और तुम्हें सब कुछ मिल जाएगा । कहीं ऊपर जाने की कल्पना मत करना । पुराणों में वर्णन मिलता है – भू, भुवः, स्वः, जनः, तप आदि लोकों का । इन लोकों के ऊपर सत्य लोक है । सत्य लोक के ऊपर विरजा नदी का वर्णन मिलता है । विरजा नदी के बाद भगवद्धाम शुरू होते हैं । ये सब सिद्धान्त सही हैं । यह बात विज्ञान से भी प्रमाणित हो चुकी है । हमारे धर्म में वाणियों में, शास्त्रों में जो कुछ भी लिखा है, सब सत्य है । इसीलिए भागवत में यह लीला वर्णित है कि ग्वालबालों ने एक बार नन्दघाट में स्नान किया, उसके बाद श्रीकृष्ण उनको वरुण लोक ले गये । ये सब बातें सही हैं क्योंकि – **यही है यही है भूलि भरमो न कोई,**
भ्रम में मत पड़ो । अगर भ्रम में पड़ोगे तो

भूलि भरमे ते भव भटकि मरिहौ ।

अगर भ्रम में पड़ जाओगे तो भवसागर में भटक-भटककर मर जाओगे । इसलिए इस विश्वास के साथ धाम में वास करो । बड़े-बड़े ब्रजनिष्ठ महापुरुष जितने भी हुए हैं चाहे गौड़ीय, वल्लभकुलीय, निम्बार्की, हरिवंशी अथवा हरिदासी हों, वे अनन्य निष्ठा और विश्वास के साथ ब्रज में रहे ।

'एक अनन्य की टेक उर में धरौ'

टेक – हम धाम में रहते हैं, यही परम पद है ।

'श्रीहरिप्रिया के परम पद पास ही'

परम पद अर्थात् सर्वोच्च स्थान ।

'आशु अनिवास ही वास करिहौ ।'

अनिवास – यह शब्द कठिन है, इसको समझना कठिन है । जैसे तुम प्राकृत स्थानों कलकत्ता, बम्बई आदि में निवास करोगे तो वहाँ माया है, वहाँ वास करने का कोई फल नहीं मिलेगा । धाम में रहने और यहाँ उपासना करने से कल्याण होने में विलम्ब नहीं लगता है । अनिवास माने यहाँ रहने पर भी माया तुमको नहीं छू पाएगी, यहाँ रहते हुए भी तुम अनिवास अर्थात् माया में लिप्त नहीं होगे ।

लोग ऐसा भ्रम उत्पन्न कर देते हैं कि नित्य धाम अलग है, ऊपर है । इसीलिए भागवत में रासपञ्चाध्यायी से पहले यह लीला गाई गयी, जिसके बारे में गोविन्द स्वामीजी ने कहा – **कहा करैं वैकुण्ठहि जाय ।**

हम लोग जो संसार के अनेक तीर्थों और स्थानों में घूमते हैं, उनकी महापुरुषों की इस वाणी में संवेदनशीलता नहीं है । हरिराम व्यासजी ने इसका खण्डन किया है – **'भटकत फिरत गौड़ गुजरात ।'**

इस ब्रज के बाहर गौड़, गुजरात आदि प्रदेशों में जाना केवल भटकना है । जो कुछ भी मिलेगा, इसी धाम के आश्रय से मिलेगा क्योंकि यहाँ एक ऐसी शक्ति है, जो धाम में अन्तर्हित है । ऐसा विश्वास रखना चाहिए ।

गोविन्द स्वामी जी कहते हैं –

कहा करैं वैकुण्ठहि जाय ।
जहाँ नहीं वंशी वट यमुना, गिरि गोवर्धन नन्द की गाय ।

यही गिरिराज, जिसकी शिलायें हमें पत्थर की दिखायी देती हैं, शास्त्रों में उन्हीं गिरिराजजी के वास्तविक रूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उनकी शिलायें मणिमय हैं, उनके तीर्थ मणिमय हैं । यह सब हमें कृपा से ही दिखायी पड़ेगा ।

जहाँ नहीं यह कुञ्ज लता द्रुम,
जहाँ नहीं वंशी वट यमुना ।

यमुनाजी का वास्तविक रूप हमें दिखायी नहीं दे रहा है, बदल गया है, इसीलिए लोगों की श्रद्धा नहीं रहती है किन्तु उपासना करो, स्वरूप प्रकट हो जायेगा । उपासना से ही वास्तविक स्वरूप दिखायी पड़ता है ।

गिरि गोवर्धन नन्द की गाय ।

जब श्रीजी की कृपा होती है तो जो गायें हमें प्राकृत दिखायी पड़ती हैं, इन्हीं की सेवा से दिव्य वृन्दावन, दिव्य धाम दिखायी पड़ेगा । आस्था होनी चाहिए, विश्वास होना चाहिए । विश्वास नहीं है क्योंकि हम लोग संसार के सुखों में आसक्त हैं, पैसा-धेला, रुपया-पैसा, भोग आदि में आसक्त हैं, इसीलिए दिव्य धाम का न दर्शन होता है, न कृपा है ।

जहाँ नहीं यह कुञ्ज लता द्रुम,
मन्द सुगन्ध बहत नहिं वाय ।

काल की एक विचित्र स्थिति है, जिसके कारण धाम का बाहरी स्वरूप बदल रहा है । ६०-७० साल पहले जब हम ब्रज में आये थे तो गह्वर वन में अरनी नामक पौधे की सुगन्ध से पूरा वन सारी रात महकता था । अब इस अवधि के दौरान अरनी का पौधा ही गायब हो गया । विश्वास भी नहीं है हम लोगों को, जबकि इसी ब्रज के बारे में महापुरुषों ने केवल लिखा ही नहीं है अपितु अपनी आँखों से भी सब देखा है, अनुभव किया है ।

कोकिल हंस मोर नहिं कूजत,
ताको बसिबो काहि सुहाय ।

हम जब ब्रज में आये तो ब्रजवासियों से सुना था –

राधाकुण्ड कृष्ण कुण्ड गिरि गोवर्धन ।
मधुर मधुर बंसी बाजे, शेई तो वृन्दावन ।।

चैतन्य चरितामृत में लिखा है कि जब चैतन्य महाप्रभु ब्रज में आये, यहाँ घूमे तो उन्होंने देखा कि सैकड़ों हिरन जा रहे हैं, वृन्दावन का जो यथार्थ स्वरूप है, वह उन्हें दिखायी पड़ा । रास्ते में एक सरोवर में पागल हाथियों का झुण्ड स्नान कर रहा था । पागल हाथी तो एक ही पर्याप्त होता है । चैतन्य महाप्रभु के साथ उनका सेवक था – 'गोविन्द' उसने कहा – 'प्रभो ! हाथियों से बचकर चलिए ।' महाप्रभु तो स्वयं श्रीकृष्ण थे । वह जानते थे कि इनसे बचना क्या ? इनमें विश्वास करना चाहिए । धाम की बाधाओं में मर जाओ किन्तु अपना विश्वास मत खोना । महाप्रभु ने सरोवर में प्रवेश किया और सामने से पागल हाथियों का झुण्ड आ रहा था । महाप्रभु ने सरोवर में स्नान किया । वे तो उन्माद में रहते थे । उन्होंने पागल हाथियों पर जल का छींटा मारा । छींटे के पड़ते ही वे पागल हाथी कृष्ण प्रेम में पागल हो गये । यद्यपि वृन्दावन महिमामृत शतक में लिखा है –

दूरे चैतन्य चरणाः कलिराविरभून्महान् ।
कृष्ण प्रेमा कथं प्राप्यो विना वृन्दावने रतिम् ।।

जीवों को मुक्त हस्त से कृष्ण प्रेम का वितरण करने वाले श्रीचैतन्य महाप्रभु अब इस जगत में नहीं हैं और संसार में कलियुग अपने विकराल स्वरूप में दिनोदिन बढ़ता जा रहा है, ऐसे में ब्रजरज के सेवन के बिना कृष्ण प्रेम की प्राप्ति असम्भव है ।

वैकुण्ठ में वृन्दावन धाम के माधुर्य रस के नितान्त अभाव से दुखी ब्रजवासी गोविन्द स्वामीजी के शब्दों में आगे कहते हैं – **जहाँ नहिं बंसी धुन बाजत,**
कृष्ण न पुरवत अधर लगाय ।

जब श्रीकृष्ण वंशी बजाते हैं तो भागवत में शुकदेवजी कहते हैं – **इति वेणुरवं राजन् सर्वभूतमनोहरम् ।**

(श्रीभागवतजी १०/२१/६)

श्यामसुन्दर की वंशी समस्त प्राणियों के मन का हरण कर लेती है । इस वंशी का प्रभाव जड़-चेतन सब जगह दिखायी पड़ा । एक तरफ तो यह बताया गया कि इसी धाम में तुमको वंशी ध्वनि सुनाई पड़ेगी और उसका प्रभाव दिखायी पड़ेगा, वह क्या है ?

'प्रेम पुलक रोमांच न उपजत'

वंशी ध्वनि सुनने वाली गोपियों के रोंगटे खड़े हो जाते हैं । उनके सारे शरीर में प्रेम के सात्विक भावों का उदय हो जाता है । **'मन वच क्रम आवत नहिं धाय'**

गोपियाँ वंशी ध्वनि सुनकर दौड़ती हुई आ रही हैं, मन से आ रही हैं, वाणी से आ रही हैं और शरीर से आ रही हैं । ऐसा ब्रजवास यदि कोई करे तो अवश्य प्रभु आ जायेंगे किन्तु ऐसा हम लोग कर नहीं पाते हैं । मन इधर-उधर जाता है, वाणी से व्यर्थ की बातें होती हैं । इस पद में कृष्ण प्राप्ति का मार्ग बताया गया है ।

'जहाँ नहीं यह भुवि वृन्दावन'

यहाँ उस वृन्दावन की बात नहीं कही जा रही है, जिसका यश पुराणों में गाया गया है, जो समस्त धामों से ऊपर, गोलोक का वृन्दावन है । इस पद में बताया गया है कि इसी पृथ्वी पर जो धाम का अवतार हुआ है, यहीं अगर तुम भजन करो और इसी धाम के प्रति निष्ठा करो, प्रेम करो तो तुमको यहीं सब कुछ मिलेगा । भुवि माने पृथ्वी पर धाम का अवतार होता है । ये तुम्हें दिखायी नहीं पड़ रहा है तो मत दिखायी पड़े ।

बाबा नन्द यशोमति माय ।
गोविन्द तजि प्रभु नन्द सुवन को,
ब्रज तजि वहाँ मेरी बसै बलाय ।।

गोविन्द स्वामीजी कहते हैं कि उस धाम वैकुण्ठ में मेरे ख़राब दिन चले जाएँ, ख़राब ग्रह चले जाएँ, वहाँ रहें किन्तु मैं वैकुण्ठ में नहीं जाऊँगा । नन्दसुवन यानी नन्दलाल और वृषभानुनन्दिनी को छोड़कर मेरे अशुभ दिन, अशुभ ग्रह दिव्य धाम में चले जाएँ, जो इस ब्रह्माण्ड से अलग है । पृथ्वी पर जिस धाम का अवतार हुआ है, मैं तो वहीं रहूँगा ।

अब तो राकेट के द्वारा विज्ञान ने भी दिखा दिया है कि ऊपर लोक हैं । जैसे अमेरिका का रॉकेट चन्द्रमा पर गया था, यद्यपि हमारे पुराणों के अनुसार वह चन्द्रलोक नहीं है, जिसका आधुनिक विज्ञान द्वारा वर्णन किया गया है किन्तु चन्द्रमा पर आधुनिक मानव जो गया, वह उसका केवल जाना ही जाना था और कुछ नहीं किया इन लोगों ने । वहाँ मनुष्य ने देखा कि चन्द्रमा पर पहाड़ है । एक अलग ही संसार वहाँ दिखायी पड़ा और उन लोगों ने प्रयत्न किया वहाँ का चित्र पृथ्वी पर भेजने का तथा वहाँ का रहस्य जानने का परन्तु कोई जान नहीं पाया क्योंकि मनुष्य के पास दृष्टि ही नहीं है । उस समय मैं पढ़ता था, जब यह समाचार सुना कि मनुष्य चन्द्रमा पर चला गया । उन लोगों का वहाँ का अनुभव मैंने पढ़ा था किन्तु इन लोगों के पास दिव्य दृष्टि ही नहीं है, इसलिए इनको ऊपर कुछ दिखायी ही नहीं पड़ सकता और इस तरह मनुष्य चन्द्रमा से वापस आ गया । अब भी लोग चन्द्रमा और आकाश के अन्य रहस्यों को जानने का प्रयास कर रहे हैं किन्तु इससे कुछ नहीं होगा ।

ब्रजगोपियों ने भागवत में गोपीगीत गाया । उन्होंने कहा –

जयति तेऽधिकं जन्मना ब्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥

(श्रीभागवतजी १०/३१/१)

इसी ब्रज में महालक्ष्मी ने वैकुण्ठ छोड़कर आश्रय लिया, क्यों लिया, इसकी आशा में आश्रय लिया । हे गोपाल ! हम गोपियाँ इसी ब्रज में तुम्हें ढूँढ़ रही हैं । तुम्हारे लिए ही हमने अपने प्राणों को धारण कर रखा है ।

गोपी प्रेम धुजा – प्रेम की ध्वजास्वरूपा इन ब्रजदेवियों जैसा गान, उनके जैसी प्रीति हम लोगों में कहाँ है ? फिर भी इस ब्रजधाम, राधारानी के बरसाना धाम में रहने से, सर्वतोभावेन यहाँ का आश्रय लेने से साँकरी खोर की दान लीला एक दिन दिखायी देगी तथा यहीं रहने से महारास की भी प्राप्ति होगी ।

श्रीधाम-आराधना

बाबाश्री के पदगान '२० दिसम्बर, २०१९' से संकलित

सबसे पहले मनुष्य को धाम महिमा जाननी चाहिए, अवश्य ही जाननी चाहिए क्योंकि बिना धाम में भावना किये कुछ प्राप्ति नहीं होगी और इसलिए भी धाम की महिमा जानना आवश्यक है क्योंकि राधारानी और श्रीकृष्ण की लीलायें यहाँ हुई हैं ।

यद् वृन्दावनमात्रगोचरमहो यन्न श्रुतीकं शिरो –
प्यारोढुं क्षमते न यच्छिवशुकादीनां तु यद् ध्यानगम् ।
यत् प्रेमामृतमाधुरीरसमयं यन्नित्यकैशोरकम्
तद् रूपं परिवेष्टुमेव नयनं लीलायमानं मम ॥

(रा.सु.नि.७६)

श्रीराधासुधानिधिकार कहते हैं कि जिन राधारानी की अन्तरंग लीलायें रास-महारास आदि केवल ब्रज वृन्दावन धाम में ही होती हैं । श्रुतियाँ जिन श्रीजी की महिमा को अपने मस्तक पर धारण करने में असमर्थ हैं । शिव, सनकादिक आदि को ध्यान में भी जो तत्त्व दिखायी नहीं देता है, जो धाम केवल पापपरायण लोगों को भी अमृत का समुद्र भगवान् की लीलाओं को दे देता है, ऐसा जो उदार धाम है, वहाँ जो नित्य किशोर अवस्था से युक्त है, उस रूप को देखने की हमारी लालसायें बढ़ती जा रही हैं ।

हम सभी लोग इसीलिए धाम की शरण में आये हैं तथा धाम के निवास के लिए बहुत से लोग अपने-अपने घर-द्वार और सभी कुछ छोड़कर प्रभु की शरण में आये हैं । इस धाम में जन्म होना, इस धाम की प्राप्ति होना, यह केवल राधारानी की कृपा से ही सम्भव है । इसी बात को वल्लभ सम्प्रदाय में अष्ट छाप के सन्त कवि छीतस्वामीजी ने कहा है – **अहो विधना तोपै अँचरा पसारि माँगौं,**
जनम जनम दीजै मोहि याही ब्रज बसिबो ।

याही माने यही ब्रज जो दिखायी पड़ रहा है, ब्रज का दिव्य रूप तो दिखायी नहीं पड़ रहा है । प्राकृत रूप ही दिखायी पड़ रहा है । इसमें शंका नहीं करो, यही धाम तुमको वहाँ पहुँचायेगा । हे दीनबन्धु, हे गोपाल ! इसी ब्रज में हमें जन्म मिल जाये । अहीर की जाति में जन्म लेने का कारण यही है कि हम गोपी बन जायेंगी और गोपी बनने के बाद श्रीकृष्ण दधि दान लेने के लिए बरसाने में आयेंगे तथा साँकरी खोर में पकड़कर हमें झकझोरेंगे एवं कहेंगे कि 'दान क्यों नहीं दे रही है ?'

दधि के दान मिस ब्रज की बीथिन माँहि,
झकझोरनि अंग-अंग को परसिबो ।

मुझे झकझोर कर नन्दलाल मेरी दही की मटकी छीनेंगे । युगों-युगों से जिस महारास की आराधना की जाती है, वह धाम में रहने पर अपने-आप मिलेगा । जिस महारास की युगों से प्रतीक्षा की जा रही थी, जिस महारास की उपासना ब्रह्म-शिवादि भी करते थे, जिस महारास को पाने के लिए महादेवजी ने गोपी शरीर धारण किया, जिस महारास के दर्शन के लिए लक्ष्मी भी तरसती रहीं और आज तक बेलवन में तपस्या कर रही हैं, उस रास-विलास की (ब्रजवास करने पर) सहज में प्राप्ति हो जायेगी । इस तरह से महापुरुषों ने धाम की प्राप्ति की इच्छा अपने इष्ट से प्रकट की । यह वही ब्रजभूमि है, जिसके पाने के बाद, ऐश्वर्य का परिपूर्णतम विकास जहाँ वैकुण्ठ आदि धाम में है, वे भी सारहीन मालूम पड़ते हैं । उस वैकुण्ठ में जाकर हम क्या करेंगे ?

'कहा करैं वैकुण्ठहि जाय'

यहाँ के रसिक ब्रजवासी द्वारका, मथुरा भी नहीं गये । अन्य पुराणों में यद्यपि किसी बहाने से उनका वहाँ जाने का वर्णन किया गया है किन्तु श्रीमद्भागवत में ऐसा वर्णन नहीं है । ऐश्वर्यमयी लीलाओं का ब्रज वृन्दावन में प्रवेश नहीं है । यह ब्रज ऐसा है, जहाँ श्रीकृष्ण ने वंशी और मयूर पंख के अलावा किसी शस्त्र को धारण नहीं किया, ऐसा पवित्र धाम है यह । नागरीदासजी कहते हैं –

हमारो मुरली वारो श्याम ।

किसी ने कहा कि तुम अपने श्याम की पहचान कुछ और बताते हो । कृष्ण लीला तो मथुरा और द्वारका में भी हुई है, वही कृष्ण हैं, फिर तुम वंशी वाले को ही अपना क्यों कहते हो ? इस प्रश्न के उत्तर में ब्रज के रसिक नागरीदासजी बोले – 'तुम नहीं समझ सकते हो । बिना मुरली और मयूर चन्द्रिका के हम उन कृष्ण को पहचानते भी नहीं हैं, जो सुदर्शन चक्र धारण करते हैं ।'

बिन मुरली वनमाल चन्द्रिका, नहिं पहचानत नाम ।

महावाणी में धाम की महिमा के प्रतिपादक पद में कहा गया है – **एक अनन्य की टेक उर में धरो ।**

'अनन्य' माने केवल धाम का निवास कर लो, यही आनन्द है । टेक रख लो कि हम धाम नहीं छोड़ेंगे ।

कहना पड़ता है, राधारानी की दया है, सैकड़ों लड़कियाँ मान मन्दिर में रह रही हैं, सैकड़ों विद्यार्थी और सन्त यहाँ रह रहे हैं, इस निष्ठा के साथ रह रहे हैं । यदि निष्ठा नहीं है, तब भी संग से आ जाती है, भाव है तो निष्ठा आ ही जायेगी, शरीर तुम्हारा चाहे किसी भी परिस्थिति से बाहर जाता है, निष्ठा हृदय में रहती है ।

'परिहरौ भर्म ज्यों फूल-फरिहौ'

फूलोगे-फलोगे और एक दिन नित्य लीला में पहुँच जाओगे ।

श्रीहरिप्रिया के परम पद पास ही,
आशु अनिवास ही वास करिहौ ।

आशु माने बहुत जल्दी, अनिवास जो धाम है, अनिवास क्यों कहा ? निवास करने पर अनेक दोष आ जाते हैं, अभाव हो जाता है या प्राकृत भाव होने से प्राकृत भावनायें आती हैं किन्तु जब वहाँ (धाम में) रहोगे तो अवश्य ही धाम की महिमा सुनोगे, उससे तुम्हारा प्राकृत भाव दूर हो जाएगा और निश्चित ही तुमको वास मिलेगा । बहुत जल्दी तुमको नित्य धाम की प्राप्ति होगी । अनिवास माने जहाँ निवास करने पर मायिक बन्धन नहीं लगते हैं, उसको अनिवास कहते हैं ।

एक-एक शब्द बड़े महत्त्व के हैं । अन्य जगह जाओगे, दौड़ोगे, उपासना करोगे तो कुछ नहीं मिलेगा । यहीं (धाम में) रहो, यहीं उपासना करो; 'आशु' का इतना अर्थ होता है । 'अनिवास' का अर्थ यह हुआ कि जहाँ रहने से माया का संक्रमण नहीं होता है, दिव्य भावनाओं की प्राप्ति होती है, इसको अनिवास कहते हैं । आशु माने शीघ्र ही तुमको उस नित्य धाम की प्राप्ति होगी, इसीलिए

'यही है यही है भूलि भरमो न कोऊ'

भ्रम पैदा नहीं करो । यह भ्रम साम्प्रदायिक कलह से होता है, साम्प्रदायिक भेद से होता है । साम्प्रदायिक भेद से ही भ्रम होता है । इस धाम के बारे में और अच्छी बातें जान लो ।

सद्योगीन्द्र सुदृश्यसान्द्ररसदानन्दैकसन् मूर्तयः
सर्वेऽप्यद्भुतसन्महिम्नि मधुरे वृन्दावने सङ्गताः ।
ये क्रूरा अपि पापिनो न च सतां सम्भाष्य दृश्याश्च ये
सर्वान् वस्तुतया निरीक्ष्य परमस्वाराध्यबुद्धिर्मम ॥

(श्रीराधासुधानिधि २६४)

जो लोग अपने कर्मों से इतने गिर हुए हैं, वे भी अगर निष्ठा से इस धाम का सेवन करते हैं तो कितने ऊपर पहुँच जाते है । **'सद्योगीन्द्र सुदृश्यसान्द्ररसदा .....'** बड़े-बड़े योगीन्द्रों के समान आनन्दैकमूर्ति बन जाते हैं, उनका शरीर रसमय बन जाता है ।'सर्वेऽप्यद्भुतसन्महिम्नि मधुरे वृन्दावने सङ्गाः' इस वृन्दावन रज में निवास करने से सबको यह चीज मिलती है । सबको कैसे मिलती है – 'ये क्रूरा अपि पापिनो न च सतां सम्भाष्य दृश्याश्च ये' धाम में जो क्रूर लोग हैं, पापी लोग हैं, सन्तों से बोलने योग्य नहीं हैं, देखने योग्य नहीं हैं । 'सर्वान् वस्तुतया निरीक्ष्य परमस्वाराध्यबुद्धिर्मम' उनको उसी रूप में देखते हुए, हिंसापरायण होते हुए देखकर भी हमारी स्वाराध्य बुद्धि हो जाये, इसलिए ग्रन्थों में सबसे पहले धाम-महिमा बतायी गई है । चाहे किसी भी सम्प्रदाय में चले जाओ, चाहे किसी आचार्य के पास चले जाओ, सबसे पहले वह तुमको धाम महिमा सुनायेगा । इसी 'श्लोक – २६४' की टीका में रसकुल्याकार लिखते हैं – 'अरे भाई ! जिसकी निष्ठा है, आराधना कर रहा है, उसको भी प्राप्ति अवश्य होगी, वह अपनी भावना से स्थापना कर रहा है कि यह वही स्थान है, यह वही है । इस प्रकार नित्य स्थापना करने से वह सिद्ध हो जाएगा । स्वतः धाम उस पर कृपा करेगा । दूसरा व्यक्ति जिसमें आराधना की शक्ति नहीं है, जिसके भीतर शरीर सम्बन्धी भेद है, उसको भी यहाँ की स्वाराध्यता, यहाँ आवास करना अवश्य फल देगा । तीसरे वे व्यक्ति हैं, जो धाम के बाहर भी आते-जाते हैं, जिनमें धाम निष्ठा नहीं है, उनको भी सिद्धान्त के बल से, जिसको स्थापना बल कहते हैं, वह यह है कि ये हमारे परम स्वाराध्य हैं, ऐसा अगर तुम्हारा भाव है तो अवश्य तुमको धाम की प्राप्ति होगी । यानी घबराओ नहीं, तुम बाहर जाते हो या किसी कारण से तुमको धाम के बाहर रहना पड़ा, जैसे बेचारे कुछ लोग परिवार के पालन के लिए, नौकरी करने के लिए धाम के

बाहर जाते हैं । ये तीसरी कोटि में आते हैं । पहली कोटि में वे हैं, जो स्वयं अपने मन में स्थापना करते हैं कि धाम हमारा परम सिद्ध देव है । दूसरी कोटि के लोग शारीरिक भेदभाव की दृष्टि से स्थापना नहीं कर पाए किन्तु किसी न किसी अंश में स्थापना तो नहीं हो पायी परन्तु निरन्तर प्रयत्नशील हैं कि यह वही धाम है, वही धाम है । तीसरे वे हैं, जो धाम के बाहर भी आते-जाते हैं, वे भी स्थापना करते हैं, उनको भी मिलेगा ।' इसीलिए रसकुल्याकार ने निर्णय कर दिया है । रसकुल्या राधासुधानिधि की विश्व की सबसे प्रसिद्ध टीका है । इसमें निर्णय कर दिया गया कि तीनों पर धाम कृपा करेगा । स्थापना बल वाले यहाँ निरन्तर रहते हैं, दूसरे वे हैं, जिनमें स्थापना बल नहीं है किन्तु इस धाम को आराध्य मानते हैं, तीसरी कोटि में वे लोग आते हैं, जो कहते हैं – महाराज ! हम क्या करें, हमारी नौकरी है, हम गृहस्थ-संसारी लोग हैं, हमारी जीविका तो धाम के बाहर ही है, हम क्या करें तो रसकुल्याकार बोले और राधासुधानिधि में भी स्पष्ट कह दिया गया है – चाहे तुम पापात्मा हो, चाहे तुमने इतने पाप किये हैं कि तुम संतों से बोल नहीं सकते, सन्तों के दर्शन नहीं कर सकते तो तुमको भी वह वस्तु मिलेगी । इस प्रकार से श्रद्धा का भेद हो जाता है । उत्तम तो यह है कि स्थापना बल पर पहुँचो, दूसरा वह है कि भेद आदि रहते हुए भी आराधना करो, तीसरा है कि तुम आराधना भी नहीं कर पाए, धाम के बाहर जाना पड़ा किन्तु हृदय में भाव रखो तो तुम्हें भी वस्तु मिलेगी ।

इस प्रकार धाम की उपासना के सम्बन्ध में ये तीन बातें बतायी गयीं ।

श्रीमानविहारी-विग्रह के प्रदाता 'मित्तल-दम्पत्ति'

श्रीशिवकुमार मित्तल एवं उनकी सहधर्मिणी, जो सन् १९८८ की श्रीराधारानी प्रथम ब्रजयात्रा में सम्मिलित हुए और यात्रा में तन, मन, धन से सेवापरायण रहते हुए यात्रा सम्पन्न की थी तथा तभी अपने सेवित श्रीविग्रह (श्रीराधामानविहारीलाल) को भी यहाँ की लीलास्थली में विराजमान करने का अनुरोध श्रीबाबामहाराज से किया । भक्तवाञ्छाकल्पतरु परम कृपामय श्रीबाबा ने इनके अनुरोध को स्वीकार कर लिया और उसी समय से श्रीमानबिहारीलाल के रूप में श्रीमानमन्दिर में उनकी सेवा होने लगी । इसके पहले मानमन्दिर में श्रीबाबामहाराज के द्वारा आराधित श्रीराधामाधव के चित्रपट की ही सेवा-पूजा की जाती थी । श्रीबाबा जब अपने प्रारम्भिक काल में श्रीराधिकारानी के इस मानभवन में अत्यधिक वैराग्यपूर्ण रहनी के साथ एकान्त में साधनरत् थे तो श्रीराधामाधव के चित्रपट की भावयोग के साथ उपासना करते थे । उस समय श्रीबाबा मानमन्दिर के नीचे स्थित मानपुर-चिकसौली आदि ग्रामों से मधुकरी (भिक्षा में ब्रजवासियों द्वारा दी गयी रोटी) माँगकर उसी का चित्रपट के रूप में मन्दिर में विराजित श्रीराधामाधव को भोग अर्पित कर प्रसाद ग्रहण किया करते थे । परम निष्काम व निष्किञ्चन-वृत्ति की भावनाएँ बाबाश्री को बड़े बाबा (सद्गुरुदेव श्रीप्रियाशरणजीमहाराज) ने सिखाई थीं, जो आज भी उन्हीं विशुद्ध भक्तिमय भावनाओं के कारण मानमन्दिर आगे बढ़ता जा रहा है ।

श्रीमित्तल दम्पत्ति द्वारा प्रदत्त अर्चाविग्रह को मानमन्दिर के अधिष्ठाता, यहाँ के स्वामी-स्वामिनी (एकमात्र मालिक) के रूप में प्रतिष्ठित करके श्रीबाबामहाराज ने इन्हें ही मानगढ़ के इष्टदेव, यहाँ की दैनिक आराधना हेतु उपास्य के रूप में वरण किया है । इस प्रकार से पूज्य श्रीबाबा ने न केवल इन अर्चाविग्रह को पूर्ण

सम्मान प्रदान किया अपितु मित्तल दम्पत्ति को भी सदा-सर्वदा के लिए सर्वोच्च सम्मान से पुरस्कृत कर दिया है । मित्तल दम्पत्ति यहाँ के अच्छे आराधकों में रहे । आपके द्वारा श्रीजी-मन्दिर के नवनिर्माण कार्य व उसकी सीढ़ियों को बनवाने में विशेष सहयोग किया गया । यद्यपि एक वर्ष पूर्व मित्तलजी लीला में प्रवेश कर चुके हैं । इस अवसर पर उनकी भार्या ने होली पूर्व मानमन्दिर में श्रीमद्भागवत सप्ताह ज्ञान यज्ञ और श्रीरामायणजी का अखण्ड पाठ कराया । ये देवी 'मानमन्दिर' के सभी सेवा कार्यों में उत्साह के साथ अपनी सामर्थ्य के अनुसार समर्पित हैं और भविष्य में शीघ्र ही अखण्ड बरसानावास की भी योजना बना रही हैं । इनके द्वारा प्रदान किये गये श्रीविग्रह 'श्रीराधामानबिहारीलालजी' के रूप में जब से मानमन्दिर में पधारे हैं, तब से ये न केवल श्रीबाबामहाराज एवं मान मन्दिरवासियों के जीवन सर्वस्व तथा उनकी आँखों के तारे बने हुए हैं, अपितु इनके आगमन व इनकी अहैतुकी कृपा से मानमन्दिर सेवा संस्थान इनके परम उदार संरक्षण में धाम-सेवा, धामवासियों की सेवा, गो-सेवा, यमुनाजी की सेवा एवं अखिल विश्व के अभूतपूर्व कल्याणकारी कार्यों में उत्तरोत्तर सफलतापूर्वक संलग्न है । श्रीराधामानबिहारीलालजी ब्रज के एक ऐसे अनूठे अर्चा विग्रह हैं, जिन्हें अपने सिंहासन पर ही एक स्थान पर स्थित रहना पसन्द नहीं है, ये तो भ्रमणशील अर्चा विग्रह हैं । मानमन्दिर से श्रीबाबा के द्वारा संचालित वार्षिकी राधारानी ब्रजयात्रा में ये पहले चालीस दिनों तक और कोरोना काल के बाद से एक महीने से भी अधिक समय तक ये देश-विदेश से पधारे पन्द्रह हजार से अधिक यात्रियों के साथ ब्रज चौरासी कोस की परिक्रमा करते हैं । ब्रज की इस सबसे बड़ी परिक्रमा का ये ही नेतृत्त्व करते हैं । मानमन्दिर के अन्य महत्वपूर्ण उत्सवों में भी ये श्रीबरसाना व गह्वरवन धाम में भ्रमण करते रहते हैं । एक बार (सन् २००६ की ब्रजयात्रा के बाद) तो ये कौतुकी ठाकुर एक चोर-भक्त के द्वारा अपना हरण करवा कर ब्रज से भागकर बंगाल में चले गये और वहाँ के दीन-हीन भावुक भक्तों को दर्शन देकर उन पर अपनी अहैतुकी कृपा वर्षा करके अत्यधिक चमत्कारिक रूप से कुछ दिनों में ही बड़े ही ठाट-बाट से वायुयान-यात्रा करके और फिर मथुरा से बरसाना तक अत्यधिक शानदार शोभा यात्रा के साथ विरह से व्याकुल अपने भक्तों को परमानन्द प्रदान करने के लिए वापस मानगढ़ में पधारे और तभी से इनके मानगढ़-पुनरागमन के उपलक्ष्य में प्रतिवर्ष पाटोत्सव कार्यक्रम आयोजित किया जाता है, जिसमें नन्दगाँव और बरसाना के गोस्वामीगण बड़े उत्साह के साथ सम्मिलित होते हैं और सामूहिक पदगान (समाज-गायन) करते हैं ।

मान मन्दिर वासियों के अत्यधिक प्रिय श्रीमित्तलजी को श्रीजी के धाम में नित्य सेवा एवं अखण्डवास का सुअवसर मिले, इस भावना के साथ .....

राधाकान्त शास्त्री, मानमन्दिर (गह्वरवन) ।

सबसे सरल-सरस साधन 'कथा-कीर्तन'

बाबाश्री द्वारा कथित 'राधासुधानिधि-सत्संग '१४/५/१९९८' से संकलित

भगवान् प्रेम और भक्ति के ही वश में होते हैं, इसके अतिरिक्त मेहनत करके, साधन करके कोई उनको कैसे वश में कर लेगा ? यह बात भागवत के तीसरे स्कन्ध में कही गयी है कि प्रभु तो प्रेम का प्यारा है, भक्ति का प्यारा है ।

पानेन ते देव कथा सुधायाः प्रवृद्धभक्त्या विशदाशया ये ।
वैराग्यसारं प्रतिलभ्य बोधं यथाञ्जसान्वीयुर कुण्ठधिष्ण्यम् ।।

(श्रीभागवतजी ३/५/४५)

भगवान् के भक्तगण भगवान् के नाम, गुण, रूप, लीला-कथा का पान करते हैं ।

देवता लोग भगवान् की स्तुति करते हुए कहते हैं – हे देव ! जो लोग आपकी कथा को पीते हैं ? पीते हैं ? हाँ, जो लोग कानों के दोने के द्वारा कथामृत का पान करते हैं अर्थात् कान से भगवान् की कथा को सुनते हैं, तो उससे क्या होता है, जो भक्ति अपने आप कभी भी मिलती नहीं है, वह प्राप्त हो

जाती है । जब भगवान् की भक्ति प्राप्त हो जाती है, केवल कथा सुनने से प्राप्त हो जाती है तो अंतःकरण स्वच्छ हो जाता है, जैसे शीशा चमकता है ।

जिसको ज्ञान नहीं हुआ, तो भी वह दो कौड़ी का ही रहता है । हम लोग साधु बनकर भी पैसा इकठ्ठा करते हैं, भोग इकठ्ठा करते हैं क्योंकि ज्ञान नहीं है, थोथा वैराग्य है । थोथा वैराग्य तो जहाँ भी है तो साधु बनकर भी मनुष्य पैसा इकठ्ठा करेगा, कुछ नहीं तो सोचेगा कि चलो आटा ही बेचें । तृष्णा सब कुछ कराती है । हरि नाम का हीरा छोड़कर मनुष्य दो, चार, दस रुपये इकठ्ठा करता रहता है क्योंकि उसको ज्ञान नहीं है, वैराग्य तो हुआ, चाहे जैसा भी हुआ किन्तु वैराग्य का सार ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ, वह कथा से अपने आप मिल जाता है । जो चीज बड़े-बड़े विरक्त साधुओं को भी नहीं मिलती है, हम लोगों को भी नहीं मिलती है, केवल श्रद्धा से कथा सुनने से एक नीच प्राणी को भी अपने आप ही वैराग्य का बाप ज्ञान मिल जाता है । और कुछ मिलता है, और क्या मिलेगा, मनुष्य भगवान् के धाम चला जाता है । जब प्रभु ही मिल जाते हैं तो फिर और क्या मिलना बाकी रह गया ? भगवान् के धाम कैसे जाता है तो कहते हैं सरलता से, बड़े आराम से जाता है, जैसे रेलगाड़ी में रिजर्वेशन कराने पर मनुष्य आराम से सीट पर लेटकर अपने गन्तव्य तक पहुँच जाता है । देवता लोग कहते हैं – **यथाञ्जसान्वीयुरकुण्ठधिष्ण्यम्** – **'अकुण्ठधिष्ण्यम्'** – भगवान् के स्थान में मनुष्य बड़े आराम से पहुँच जाता है । यह भगवान् की कितनी बड़ी कृपा है, दया है । कुछ वैराग्य नहीं कर सकते, कुछ साधन नहीं कर सकते, जप-तप नहीं कर सकते, ज्ञान नहीं है, पशु जैसे हम लोग हैं । ऐसी स्थिति में केवल श्रद्धा के साथ भगवान् की कथा सुनो तो अपने आप ही तुमको वैराग्य के पिता ज्ञान की प्राप्ति हो जायेगी, सरलता से भक्ति मिल जायेगी, अन्तःकरण स्वच्छ हो जायेगा, चमचमाने लगेगा, यह मन का शीशा पूरी तरह से साफ़ हो जायेगा, हृदय का शीशा चमकने लगेगा और फिर प्रभु के धाम में चले जाओगे । भक्ति तो बहुत ऊँची चीज है, भगवान् की केवल कथा के सुनने से ही इतना सब कुछ हो जाता है । शंका होती है कि यदि केवल कथा सुनने से ही इतन सब कुछ हो जाता है तो फिर जो बड़े-बड़े लोग तपस्या करते हैं, लाखों वर्षों की समाधि लगाते हैं तो ये लोग इतनी मेहनत क्यों करते हैं ? इसका यही उत्तर है कि इतनी तपस्या करना, इतना परिश्रम करना, धक्का खाना इनके भाग्य में ही लिखा है, अब इसके लिए क्या किया जा सकता है ? उदाहरण के लिए समझो, जैसे किसी ने मान मन्दिर में आकर पूछा कि श्रीजी के मन्दिर जाने का कौन सा रास्ता है ? अब हमने बता दिया कि पहाड़ के रास्ते से चले जाओ, बिलकुल सीधा रास्ता है । उस व्यक्ति के अन्दर श्रद्धा थी नहीं, इसलिए वह बोला – 'नहीं, पहाड़ से होकर मैं नहीं जाऊँगा ।' वह नीचे उतरकर दूर स्थित गाँव रूपनगर गया, वहाँ से हाथिया गाँव पहुँचा, फिर बोला कि अब यहाँ से सड़क के रास्ते से श्रीजी मन्दिर चलना चाहिए । इस तरह डेढ़ कोस का चक्कर लगाकर वह श्रीजी मन्दिर पहुँचा । पूछा जाए कि ऐसा क्यों किया तो उत्तर यही है कि उसके भाग्य में ही धक्के खाना लिखा था । श्रीजी के मन्दिर की ओर जो सीधा रास्ता बना है, उधर से नहीं गया । इसी तरह जो लोग सरल साधन भगवान् की भक्ति, भगवान् का नाम, भगवान् की कथा और गुणगान छोड़कर के लाखों वर्ष तक तपस्या करते हैं, समाधि लगाते हैं, बड़ा कठोर साधन करते हैं तो देवगण उनके बारे में कहते हैं –

तथापरे चात्मसमाधियोगबलेन जित्वा प्रकृतिं बलिष्ठाम् ।
त्वामेव धीराः पुरुषं विशन्ति तेषां श्रमः स्यान्न तु सेवया ते ।।

(श्रीभागवतजी ३/५/४६)

जो लोग बहुत परिश्रम करने के बाद समाधि लगाते हैं, समाधि लगाने के बाद योगबल से अपनी प्रकृति (स्वभाव) को जीत लेते हैं । (प्राणायाम से समाधि लगाने में कितना कष्ट होता है, इसका हम लोग अनुमान ही नहीं लगा सकते किन्तु मान लो कि किसी ने बहुत साल तक मेहनत किया और समाधि लगा लिया । असली समाधि की बात हम कह रहे हैं, नकली समाधि वाले तो बहुत से आजकल घूमा करते हैं ।)

देवगण कहते हैं कि किसी ने बहुत वर्षों तक कठोर परिश्रम करके समाधि लगाई और अपनी प्रकृति यानी स्वभाव को जीत लिया और फिर बहुत मेहनत के बाद भी जब भगवान् की कृपा होगी तब वह भगवान् के पास

पहुँचेगा, समाधि के बल से नहीं । उनको केवल परिश्रम ही हाथ लगा । नाक बन्द करो, फिर प्राणायाम के लिए साँस खींचो, कुछ लोगों की तो प्राण अटकने के कारण मृत्यु तक हो जाती है । यह बड़ा ही कठिन रास्ता है । इतना कठिन रास्ता तय करके यदि कोई भगवान् के पास पहुँच भी गया तो भी उनके हाथ तो केवल कठोर परिश्रम ही लगा । **न तु सेवया** – जो सेवा अर्थात् भगवान् की भक्ति करते हैं, उनको कोई मेहनत नहीं करनी पड़ती है । भक्ति मार्ग में कोई मेहनत नहीं होती है और भक्त सीधे ही भगवान् के पास पहुँच जाते हैं, जो श्रद्धा के साथ भगवान् की लीला-कथा को सुनते हैं । इसीलिए राधासुधानिधि के प्रथम श्लोक में कहा गया – **'योगीन्द्रदुर्गमगतिः'** अर्थात् योगी लोग भगवान् की गति को पा ही नहीं सकते । यही बात देवताओं ने भी कही और यही बात ब्रह्माजी ने भी कही है ।

श्रेयः श्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो क्लिश्यन्ति ये केवल बोधलब्धये । तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते नान्यद् यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ।। (श्रीभागवतजी १०/१४/४)

जैसे लोग खेत में दाँय करते हैं तो अनाज निकाल लेते हैं और भूसा रह जाता है, अब यदि कोई भूसे को कूटने लग जाए तो चाहे सौ वर्ष तक कूटो किन्तु भूसे में अनाज है ही नहीं तो कैसे निकलेगा ? इसी प्रकार ज्ञान, योग और तपस्या आदि जितने भी साधन हैं, इनका आश्रय लेना केवल भूसा कूटने के समान है । लाखों जन्मों तक कोई यदि भूसा कूटता रहे, तब भी भगवान् की कृपा के बिना कुछ नहीं मिलेगा । अगर कोई मेहनत से भगवान् को जीत ले तब तो वह भगवान् से भी बड़ा हो गया । इसीलिए भागवत के दशम स्कन्ध में ब्रह्माजी ने जब भगवान् की स्तुति की तो उन्होंने एक बहुत अच्छी बात कही कि जीव कुछ समझता नहीं है । वह कहता है कि हम मेहनत करके भगवान् को प्राप्त करेंगे । भगवान् की भक्ति के सीधे-सरल मार्ग, कृपा के मार्ग को न पकड़कर ऐसा साधन करता है कि जिससे अहंकार हो जाए – 'मैंने ये किया, मैं ऐसा साधन करता हूँ, मैं बड़ा तपस्वी हूँ, मैं बड़ा योगी हूँ ।' ये सब रास्ते भगवान् से दूर कर देते हैं । अब समझो कि ये रास्ते खतरनाक क्यों हैं, इसलिए खतरनाक हैं क्योंकि इनमें अहम् भाव पैदा हो जाता है कि मैंने इतनी कठोर तपस्या की, मैंने इतना दुष्कर साधन किया, जबकि भक्ति मार्ग में ऐसा कुछ नहीं है । इसमें तो केवल भगवान् की कथा सुन लो, भगवान् के गुण गा लो, भगवान् की लीला अनुकरण करो, अब इससे अहंकार कहाँ से होगा ? अहंकार तो तब होता है, जब जीव बड़ा साधन करता है, समाधि लगाता है, प्राणायाम करता है, योग करता है, कितने ही लोग तो जल शय्या करते हैं, कितने ही लोग तो पंचाग्नि अर्थात् आग के बीच में बैठकर तपते हैं, पता नहीं क्या-क्या साधन लोग करते रहते हैं ।

ब्रह्माजी तो गोपालजी की ब्रजलीला को देखकर मोहित हो गये और सोचने लगे कि ये कैसा भगवान् है जो बच्चों की जूठन लेकर खाता है, इसलिए उनकी परीक्षा लेने के विचार से उनके बछड़ों और ग्वालबालों को ही चुराकर ले गये और अन्त में भगवान् ने उतने ही रूप स्वयं बना लिये । उन्हें देखकर ब्रह्माजी बड़े आश्चर्य में पड़ गये और गोपालजी की शरण में गये । शरण में जाकर वे गोपालजी से कहते हैं – मैं जगत्पिता होकर इस ज्ञान के चक्कर में पड़ गया, भूसा तो मैं ही कूटने लग गया ।

श्रेयः श्रुतिं..... । (श्रीभागवतजी १०/१४/४)

हे विभो ! आपकी भक्ति परम कल्याण का झरना है । उसको छोड़कर, ऐसी प्यारी भक्ति के साधन कथा श्रवण और लीला-गुण गान को छोड़कर लोग कष्ट उठाते हैं और कहते हैं कि हम ज्ञान प्राप्त करेंगे, योग करेंगे, तपस्या करेंगे और इस तरह कठोर साधनों में चले जाते हैं । उनके भाग्य में केवल कष्ट उठाना ही लिखा है । मीठा साधन जैसे कितनी सुन्दर प्रभु की लीलायें हैं, इन मधुरता की बातों को छोड़कर क्लिष्ट साधनों को अपनाते हैं । इससे पता चलता है कि इनके भाग्य में केवल कष्ट भोगना ही लिखा है ।

हे कृष्ण ! ये लोग बड़े अभागे हैं, जो तपस्या करने चले गये, ज्ञानी बनने चले गये, योगी बनने चले गये । उनका भाग्य फूट गया, उनके भाग्य में केवल क्लेश ही लिखा है, वे जीवन भर केवल भूसा ही कूटते रहेंगे ।

यह तो राधारानी की कृपा है कि हम लोग यहाँ उनकी लीला गाते हैं अथवा जैसे श्रीकृष्ण ग्वालबालों के साथ खेलते हैं, कभी गायें चराते हैं । ब्रजवासी लोग रसमयी लीलाओं पर आधारित ब्रज के रसिया गाते हैं अथवा होली लीला के बहुत सुन्दर गीत गाते हैं तो मैंने

देखा है कि जब बाहर के कुछ बहुत पढ़े-लिखे लोग आ जाते हैं, ऊँचे महात्मा चले आते हैं तो वे लीला गान और नृत्य को हुल्लड़ समझते हैं और इस साधन में उनकी श्रद्धा नहीं होती है, इसमें उनको रस नहीं मिलता है । उस समय ब्रह्माजी की यही बात याद आ जाती है कि इनके भाग्य में भूसा कूटना ही लिखा है । ये केवल भूसा ही कूटेंगे । भूसा कूटना भी कोई खेल नहीं है । ज्ञान प्राप्त करना कोई खेल नहीं है । इसीलिए सुधानिधिकार ने कृष्ण के लिए कहा – **योगीन्द्र दुर्गम गतिः** – ये कृष्ण योगियों को नहीं मिल सकते हैं । ये लोग भगवान् की गति को नहीं समझ सकते । भगवान् को पकड़ने का, भगवान् से मिलने का, सबसे सच्चा और सही रास्ता भागवत में माता कुन्ती ने बताया है परन्तु इस रास्ते पर कोई चल नहीं पाता है । ब्रजवासी होकर भी लोग नहीं चल पाते हैं । एक बार मेरे पास कुछ गाँव के लोग आये, वे पहले बहुत कीर्तन करते थे । उन्होंने कहा कि अब हमारे गाँव में यज्ञ होगा । हमारे गाँव में अमुक महात्मा आ गये हैं, वे ही यज्ञ करा रहे हैं । अब घर-घर से गेहूँ इकठ्ठा किया जायेगा, घी एकत्रित किया जायेगा और इस तरह महीनों तक यज्ञ चलेगा, ऐसा यज्ञ आज तक कभी नहीं हुआ होगा । अब हम उनसे क्या कह सकते थे, समझ गये कि इनके भाग्य में अब भूसा कूटना ही लिखा है । अधिक हमने उन लोगों से कुछ कहा नहीं कि क्योंकि वे यज्ञ में पधारने वाले बड़े-बड़े महात्माओं का नाम बताने लगे । हम अधिक कुछ कहते तो वे लोग समझते कि ये द्वेष करते हैं । इसलिए हमने उन लोगों से कुछ नहीं कहा किन्तु इतना अवश्य समझ गये कि इनके भाग्य में भूसा कूटना लिखा है । यज्ञ कराने के लिए बहुत अधिक धन का संग्रह किया गया, जबकि वास्तविकता यह है कि कलियुग में यज्ञ कराने के लिए न कोई मन्त्रज्ञ है, न तन्त्रज्ञ है । सच्चा साधन तो भगवान् का यश, भगवान् की कथा है । नारदजी ने भागवत के प्रथम स्कन्ध में ही बता दिया है कि यज्ञ आदि साधनों का फल है भगवान् की कथा । इसके बिना तो यज्ञ भी कुयज्ञ है । **जोग कुजोग ज्ञान अग्यानू** – यह सब अज्ञान है । नारदजी कहते हैं –

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा
स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः ।
अविच्युतोऽर्थःकविभिर्निरूपितो
यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ।। (श्रीभागवतजी १/५/२२)

तपस्या का फल भगवान् का गुणगान अर्थात् कथा है । वेद पढ़ने का फल भी भगवान् की कथा है, बहुत बड़े यज्ञ का फल भी कथा है, बहुत बड़े ज्ञान का फल है कथा, बहुत बड़े दान का फल है कथा ।

दो तरह के फल होते हैं । एक तरह का फल तो थोड़ी देर में नष्ट हो जाएगा । जैसे फूस की झोंपड़ी आँधी में उड़ जायेगी और एक है किला, उसको आँधी-तूफान कोई हानि नहीं पहुँचा सकते । वैसे ही एक तो फल होता है – विच्युत अर्थात् जो थोड़ी देर में नष्ट हो जाएगा जैसे किसी ने दान किया तो उसे स्वर्ग की प्राप्ति हो गयी, यज्ञ किया तो भोग मिल गया – ये सब फल विनाशी हैं । इनको विच्युत फल कहा गया है । पक्का फल क्या है ? वह है अविच्युत – जो कभी नष्ट नहीं होगा, वह है उत्तमश्लोक भगवान् की कथा, श्यामसुन्दर की कथा, उनकी लीला । तपस्या, वेद अध्ययन, यज्ञ, दान और ज्ञान का अविच्युत फल है – भगवान् की लीला, कथा । भगवान् लीला कर रहे हैं, आज गोचारण कर रहे हैं, आज वंशी बजा रहे हैं । तपस्या, यज्ञ, दान और ज्ञान आदि का यह फल है । जब मनुष्य उल्टा चलता है, जैसे किसी ने कहा कि हमको आम का फल चाहिए तो सीधी सी बात है कि उसको आम का फल दे दिया किन्तु वह व्यक्ति बोला कि नहीं, पहले मुझे आम का पेड़ दिखाओ तो उससे कहा गया कि वहाँ पर बगीचे में आम का पेड़ है, वहाँ चले जाओ । वह व्यक्ति बगीचे में गया, अब उसको आम का फल दिया जा रहा है, उसको तो ले नहीं रहा है । बगीचे में गया तो वहाँ बहुत ऊँचे पेड़ थे तो वह बोला कि अब मैं इन पेड़ों पर चढ़ूँगा । बड़ी कठिनाई से वह पेड़ पर चढ़ा और फल बहुत ऊँचाई पर लगे थे, उन तक पहुँचकर वह फलों को तोड़ने लगा तो बच गया, नहीं तो गिर पड़ता तो मर जाता । कहने का तात्पर्य यह है कि प्राणी फल को छोड़कर डाल-डाल पर घूमता है । हमारा यह कहना है कि भागवत के अनुसार भगवान् की कथा-कीर्तन तो है फल । अब वे बहुत अच्छे लोग थे, मान मन्दिर की ब्रज यात्रा भी कर चुके थे, कीर्तन भी करते थे किन्तु कुछ महन्त लोग उनके पास पहुँच गये, कई

महीनों से चन्दा कर रहे हैं कि अब तो गाँव में यज्ञ होगा । हम उनकी बात सुनकर चुप रहे लेकिन सच्चाई तो यह है कि सब साधनों का फल भगवन्नाम मिल गया है, उस नाम को लो, कथा भी फल है, अतः कथा सुनो ।

'**अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो**' – भगवान् की कथा और भगवान् का नाम – ये फल है, जो तुमको मिल गया है, उसे ग्रहण करो । यह सच्चा फल है जो कभी नष्ट नहीं होगा, उसको छोड़कर अब तुम जा रहे हो यज्ञ करने, उसके लिए संग्रह कर रहो कि अब इतने पीपे घी के हो गये, इतना मन अनाज आ गया । फल हाथ में मिल रहा है, उसको छोड़कर पेड़ पर ऊँची डाल पर चढ़ रहे हो फल को पाने के लिए, जबकि उसमें गिरने का खतरा है । इसी प्रकार यज्ञ में भी आजकल कई तरह के झगड़े लग गये हैं । तुम लोगों को पता नहीं आजकल हर यज्ञ में दक्षिणा के कारण लड़ाई-झगड़े होते हैं । बड़े महन्त लोग आते हैं, उनके बीच बहुत झगड़े होते हैं । लोगों के अन्दर समझ की कमी है, इसीलिए ऐसे यज्ञों के पीछे भागते हैं । **अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो** – इस बात को समझदार, विद्वान भगवान् के भक्त लोग ही समझ सकते हैं कि जब हमको फल मिल गया है तो फिर हम पेड़ पर क्यों चढ़ें और गिरकर मरें । इसीलिए श्रीमदराधासुधानिधि ग्रन्थ में सर्वप्रथम ही यह बात कही गयी, क्यों कही गयी, इसलिए कही गयी ताकि हम लोग सिद्धान्त समझें । बहुत से लोग सोचते हैं कि राधासुधानिधि तो रस का ग्रन्थ है, फिर इसमें सिद्धान्त की बात क्यों कही गयी, इसलिए कही गयी कि पहले इसको समझो, इसको नहीं समझोगे तो फल को छोड़कर डाल और शाखा पर दौड़ने लग जाओगे । श्रीजी की लीला साधारण बात नहीं है । केवल सच्चे भक्त लोग ही इसको समझ सके हैं । भागवत के श्लोक १/५/२२ में जो '**कविभिर्निरूपितो**' शब्द कहा गया है, इसको हर व्यक्ति नहीं समझ सकता । बड़े-बड़े योगी नहीं समझ पाए, फिर हम लोग तो क्या समझेंगे ? दुर्वासाजी शिवजी के अंशावतार हैं, उन्होंने भक्ति का महत्त्व कम समझा, इसीलिए वे एक वर्ष तक विभिन्न लोकों में चक्कर काटते रहे और भगवान् का सुदर्शन चक्र उनकी गर्दन काटने के लिए उनके पीछे-पीछे घूमता रहा । इसीलिए तो सुधानिधि में कहा गया – '**योगीन्द्रदुर्गमगतिः**' - प्रभु की लीला और उनका रस योगीन्द्रों के लिए दुर्गम है । यह साधारण बात नहीं है । एक भक्त और बहुत बड़े तपस्वी में अन्तर समझ लो । दुर्वासाजी ने तो अम्बरीषजी के ऊपर क्रोध किया कि तूने मुझे बिना कुछ खिलाये चरणामृत कैसे पी लिया ? उन्होंने अम्बरीषजी को मारने के लिए कृत्या राक्षसी उत्पन्न की । भयंकर आकृति वाली वह कृत्या अम्बरीषजी को खाने के लिए दौड़ी क्योंकि दुर्वासा ने बहुत तपस्या की थी, अतः उनके पास शक्ति थी, जबकि अम्बरीषजी एक गृहस्थ थे, उनकी बहुत सी रानियाँ थीं । किन्तु भगवान् की भक्ति सबसे बड़ी है । भगवान् का चक्र अम्बरीषजी की रक्षा हेतु उनकी सेवा में सदा उपस्थित रहता था । अम्बरीषजी कोई अदालत नहीं लगाते थे, उनके यहाँ कोई मुकदमा नहीं होता था । भागवत के अनुसार अम्बरीषजी के राज्य में भगवान् की ओर से न्याय का कार्य सुदर्शन चक्र ही करता था । संसार के जजों को तो गवाही चाहिए, वकील चाहिए, अर्जी चाहिए, कागज़ देखकर सोचते हैं कि कौन सी धारा लगी है ? गवाह, सबूत चाहिए । गवाह भले ही झूठा है किन्तु उसकी बात सही बैठ जायेगी तो गलत फैसला दे देते हैं किन्तु जहाँ सुदर्शन चक्र जी उपस्थित हैं, उनको तो गवाही की आवश्यकता नहीं है, वे तो अन्तर्यामी हैं, जैसे ही कोई मन में गलत बात सोचता था, उसी समय उसके शरीर में जलन उत्पन्न हो जाती थी । इस तरह अम्बरीषजी के राज्य में गलत काम होते ही नहीं थे । दुर्वासाजी तपस्वी थे, उन्होंने क्रोध करके अम्बरीषजी को मारने के लिए कृत्या राक्षसी उत्पन्न की, वह धरती को कँपाती हुई अम्बरीषजी को मारने के लिए दौड़ी किन्तु अम्बरीषजी के हृदय में क्रोध उत्पन्न नहीं हुआ । इसी को कहते हैं भक्ति, इसी को कहते हैं रस और इसी को कहते हैं प्रेम । भगवान् के भक्त के हृदय में भक्ति की शक्ति से क्रोध आदि उत्पन्न ही नहीं होते हैं । अन्त में सुदर्शन चक्र ने कृत्या राक्षसी को जला दिया और दुर्वासाजी के पीछे लग गये । अब तो दुर्वासाजी उनसे बचने के लिए लोक-लोकान्तरों में भागते रहे । ब्रह्माजी के पास गये, शिवजी के पास गये, वैकुण्ठ भी चले गये किन्तु किसी ने उनकी रक्षा नहीं की । भगवान् तक ने कह दिया कि अम्बरीष जी के पास जाओ । अन्त में उन्हें अम्बरीषजी की

ही शरण में आना पड़ा । अब देखो अम्बरीषजी की महिमा । कहाँ तो एक ओर दुर्वासाजी, जो योग और ज्ञान के सबसे बड़े अधिकारी थे, फिर भी उनकी कहीं रक्षा नहीं हो सकी । इसीलिए सुधानिधि में कहा गया – योगीन्द्र दुर्गम गतिः । दुर्वासाजी ने देखा कि एक वर्ष से अम्बरीषजी ने अन्न तो क्या, जल भी नहीं ग्रहण किया था और अपने प्रति भयंकर अपराध करने वाले दुर्वासा की रक्षा के लिए सुदर्शन चक्र से प्रार्थना कर रहे थे । ऐसा भक्त का हृदय होता है, उसके हृदय में किसी भी प्राणी के प्रति शत्रुता की भावना नहीं होती है । उनके हृदय में दया और क्षमा के अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं रहती । इसीलिए दुर्वासाजी ने कहा – आश्चर्य है, आज मैंने भगवान् के भक्तों की महिमा को समझा । इसके पहले लाखों वर्षों की तपस्या के पश्चात् भी मैं कभी भगवान् के भक्तों की महिमा को नहीं समझ सका था ।

अहो अनन्तदासानां महत्त्वं दृष्टमद्य मे ।
कृतागसोऽपि यद् राजन् मङ्गलानि समीहसे ।।

(श्रीभागवतजी ९/५/१४)

दुर्वासाजी बोले – अहो ! आज मैं समझा अनन्त भगवान् के दासों की और भक्ति की महिमा । लाखों वर्ष तक तपस्या की, तब नहीं समझा ।

अब दुर्वासाजी की घटना से विचार करो कि भक्ति की महिमा को समझना कितना कठिन है । दुर्वासाजी जैसे योगी कह रहे हैं कि लाखों वर्ष की तपस्या के पश्चात् भी मैं भक्ति की महिमा को नहीं समझ सका । दुर्वासाजी के बारे में यह मत समझ लेना कि सुदर्शन चक्र के कारण उनको अपार कष्ट हुआ, तब वे भगवान् की भक्ति की महिमा को समझ सके । नहीं, कष्ट की बात नहीं है । साल भर तक चक्र दुर्वासा को जलाने के लिए उनके पीछे घूमता रहा तब वे भक्ति की महिमा नहीं समझे, फिर कब समझे, जब साल भर बाद वे लौटे तो देखा कि अम्बरीषजी चक्र से प्रार्थना कर रहे हैं कि दुर्वासा को कोई नुकसान न हो जाए, जबकि दुर्वासा ने उनको जलाने के लिए कृत्या राक्षसी उत्पन्न की थी । इसीलिए शंकरजी ने कहा है –**उमा संत कइ इहइ बड़ाई । मंद करत जो करइ भलाई ।।** (श्रीरा.मानस, सु. - ४१) भक्त की महिमा को महादेवजी पार्वती से कह रहे हैं कि सच्चा भक्त कौन है ? अगर ये बात हम लोगों के जीवन में आ जाए तो अभी हमें प्रभु की प्राप्ति हो जाए किन्तु यह बात आती नहीं है । हम लोग तो उस वृत्ति के हैं कि एक कुत्ता भौंकता है तो उसको देखकर दूसरा कुत्ता भी भौंकता है । हम लोगों की यह गन्दी प्रकृति नहीं बदलती है । भक्ति तो यही है कि अम्बरीषजी ने अपना भयंकर अपराध करने वाले की रक्षा हेतु एक साल तक अन्न-जल नहीं ग्रहण किया और प्रार्थना कर रहे हैं कि दुर्वासाजी का भला हो जाए । ऐसा हृदय बनना चाहिए । इसीलिए दुर्वासाजी ने कहा कि आज मैं भगवान् के दासों की महिमा को समझा । ऐसी आदत हम लोगों को अपने भीतर डालनी पड़ेगी । कोई गाली दे तो मुस्कुरा दो, कोई अपमान कर दे तब भी मुस्कुरा दो, कोई तुमसे वैर कर रहा है तो हँस दो । खीझना मत सीखो और फिर देखो कि इस आचरण से भगवान् तुम्हारे वश में होते हैं कि नहीं ।

दुर्वासाजी ने जब अम्बरीषजी का ऐसा दिव्य गुण देखा, तब वे आश्चर्य से बोले कि अरे, ऐसा भक्त का हृदय होता है ? आज मैं भगवान् के दासों की महिमा को समझ सका । हे राजन् ! मैंने तो तुम्हारा अपराध किया और फिर भी तुम मेरा मंगल चाह रहे हो ।

इसीलिए ज्ञान और योग आदि साधनों से भगवान् को नहीं समझा जा सकता और फिर इस रस को तो बिलकुल ही नहीं समझा जा सकता, जिस रस में भगवान् भी किशोरी श्रीराधारानी की आधीनता करते हैं, फिर इस रस को कोई साधारण आदमी कैसे समझ सकता है ? वह तो ऐसे ही समझेगा जैसे हर पुरुष अपनी पत्नी के चक्कर में अपने माता-पिता और परिवार से अलग हो जाता है । इसलिए संसारी आदमी इस बात को नहीं समझ सकता कि जहाँ गोपीजन का विशुद्ध प्रेम है, जिस प्रेम में श्रीकृष्ण भी श्रीजी के अंचल से उत्पन्न वायु के स्पर्श से अपने को धन्यातिधन्य मान रहे हैं, उसका क्या कारण था ? यदि कोई पूछे कि श्रीकृष्ण श्रीजी के अंचल की हवा से धन्य हो गये, ऐसा क्यों है तो स्वयं श्रीकृष्ण कहते हैं – 'हे लाड़ली ! हे किशोरी ! आपके चरणकमल की यदि परछाँई भी मेरे ऊपर पड़ जाए तो मैं कृतार्थ हो जाऊँगा ।' क्यों ? बस, यही तो प्रेम की महिमा है । समझो, प्रेम कितनी बड़ी चीज है ।

'मानमन्दिर कला अकादमी' द्वारा प्रस्तुत नाटिका
'राधाकृष्ण विवाहोत्सव' की झलकियाँ

श्रीमाताजी–गौशाला में सम्पन्न हुए
श्रीसीतारामविवाह–महोत्सव की झलकियाँ

RNI REFERENCE NO. 1313397- REGISTRATION NO. UP BIL-2017/72945-TITLE CODE UP BIL-04953 POSTAL REGD.NO. 093/2024-2026 श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान के लिए प्रकाशक/मुद्रक एवं संपादक राधाकांत शास्त्री द्वारा गुप्ता ओफ़्सेट प्रिंटर्स A- 125/1 , wazipur industriyal area, new delhi- 52 से मुद्रित एवं मान मन्दिर सेवा संसथान, गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.) से प्रकाशित [AGRA/WPP-12/2024-2026 AT 31.12.26]